संस्कृत संपदा

कुछ मौक्तिक



— प्रयागदत्त चतुर्वेदी

संस्कृत - संपदा

कुछ मौक्तिक

प्रयागदत्त चतुर्वेदी

प्रकाशक :

प्रयाग शिक्षा संस्थान

'अरुणालोक'

निरालानगर, लखनऊ

मूल्य : रु. 120/– (मात्र)

प्रथम संस्करण : 2006

मुद्रक :शिवम् आर्ट्स, 211 पाँचवीं गली निशातगंज, लखनऊ।
फोन : 2782172, 2782348

परिचय

श्री प्रयागदत्त चतुर्वेदी मेरे बाल्यबंधु ही नहीं, कालेज के दिनों के साथी और बाद में एक ही सरकारी सेवा में सहयात्री रहे है। उनके विषय में जानने का दावा करते हुए भी उनके व्यक्तित्व के एक प्रतिभापूर्ण पक्ष का मुझे काफी देर से परिचय प्राप्त हुआ। वे प्राचीन साहित्य और संस्कृति के गंभीर अध्येता रहे हैं, पर एक क्षमतावान् लेखक के रूप में उनके कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यों की जानकारी मुझे कुछ वर्षों पहले ही प्राप्त हुई। इस सम्बन्ध में उनके संकोची स्वभाव के बावजूद उनकी कुछ रचनायें पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 'सरलसंस्कृतम्', परिहासशतकम्, "Gems from Sanskrit Literature और 'सड़क से फुटपाथ तक' जैसी कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। अंतिम पुस्तक आधुनिक समाज की विसंगतियों को अनावृत करने वाला व्यंग्य–निबंधों का संग्रह है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी कृतियाँ पाठकों का संस्कृत साहित्य की विशिष्टताओं से परिचय कराने के लिए और उसके आस्वादन के लिए उपलब्ध हैं। स्पष्ट है, उनकी प्राथमिक रुचि संस्कृत साहित्य के विविध पक्षों से सामान्य पाठक को परिचित कराने और उसकी रुचि का परिष्कार करने में है।

इसी श्रृंखला में अब उनकी यह कृति 'संस्कृत संपदा' पाठकों के सामने आ रही है। आकार में बहुत बड़ी न होते हुए भी संस्कृत से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर इसका आयतन बड़ा है। प्रधानता आस्वादपरक निबंधों की है जिनमें पाठकों को न केवल आदि कवि बाल्मीकि से लेकर भास और कालिदास जैसे महान् कृतिकारों की रचनाओं की आस्वादक समीक्षा मिलेगी बल्कि उनके काव्य के उत्कृष्टतम उदाहरणों से पाठक को उनके काव्य का आनन्द भी प्राप्त होगा। इन समीक्षाओं के अतिरिक्त यहाँ संस्कृत–साहित्य की विश्व–साहित्य में स्थिति या इस साहित्य के मानवतावाद आदि पर सूचनापरक तथा विचारोत्तेजक निबंध भी प्राप्त होंगे।

संस्कृत–साहित्य में 'सुभाषितो' का एक अनूठा स्थान है जो एक स्वतंत्र विधा के रूप में अधिकांश दूसरे साहित्यों में नहीं मिलता है। चतुर्वेदीजी की संस्कृत कविता के इस पक्ष में विशेष रुचि है। वे पहले ही संस्कृत साहित्य के अनेक सुभाषितों, नीति–वचनों तथा अन्य उत्कृष्ट कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद Gems from Sanskrit Literature' में प्रस्तुत कर चुके है। यहाँ भी पाठक को संस्कृत के इस पक्ष पर पर्याप्त सामग्री मिलेगी।

एक निबंध भास के नाटकों से भी सम्बन्धित है। भास उन रचनाकारों में हैं जिनके नाटकों का अनेक संस्कृत ग्रंथों में उल्लेख होने के बावजूद उनकी कृतियाँ उपलब्ध नहीं थीं। इनके नाटकों की खोज 1913 में हुई। संस्कृत के नाट्‌य–सम्बन्धी विकास में इनके नाटक, जो अपेक्षाकृत सबसे अधिक प्राचीन हैं, विशेष महत्व रखते हैं। इस संग्रह में पाठकों को उनका परिचय भी प्राप्त होगा।

जो लोग संस्कृत को मृतभाषा मानने की भूल करते है और उसके विकास तथा उसकी श्री–वृद्धि की निरंतर प्रवहमान धारा से अनभिज्ञ हैं, उनके लिए यह संग्रह विशेष रूप से उपयोगी होगा। अपनी प्रस्तावना में तथा एक विशेष निबंध में लेखक ने आधुनिक काल में लिखे जाने वाले संस्कृत–साहित्य पर हमें विशेष सामग्री दी है। यह इस पुस्तक का बड़ा ही महत्वपूर्ण पक्ष है। जैसा कि लेखक ने स्वयं स्पष्ट किया है, यह कृति संस्कृत के सभी पक्षों का क्रमबद्ध या व्यापक विवरण नहीं है। इसका उद्‌देश्य केवल सामान्य पाठकों की रुचि को अपनी पुरानी साहित्यिक धरोहर के प्रति प्रवर्तित करना है। निश्चय ही चतुर्वेदी जी के आस्वादपरक निबंध अपने उद्‌देश्य की पूर्ति में पूर्णतया सफल हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि पाठक समुदाय में इस कृति का उत्साहपूर्ण स्वागत होगा।

श्रीलाल शुक्ल

बी–2251, इंदिरा नगर,

लखनऊ (उ.प्र.)

Dr. G. C. Tripathi
Professor & Head,
Kalakosh Division

नई दिल्ली, 15.2.2006

शुभाशंसन

पं0 प्रयागदत्त चतुर्वेदी द्वारा समय–समय पर विविध साहित्यिक–सांस्कृतिक विषयों पर लिखे गये निबंधों का यह अनुपम संकलन उनकी वैविध्यपूर्ण साहित्यिक अभिरूचि एवं उनके ज्ञान–गाम्भीर्य का उत्तम परिचायक है। संस्कृत साहित्य एवं भारतीय संस्कृति के वे सुधी अध्येता एवं चिन्तक हैं। संस्कृत के प्राचीनतम साहित्य से लेकर उसकी अधुनातन प्रवृत्तियों एवं रचनाओं तक उनका गंभीर अध्ययन है–'संस्कृत भाषा का अध्ययन क्यों अपेक्षित है', इस विषय पर उनके इस संकलन का सर्वप्रथम लेख ही पाठक को उनके ज्ञान की विपुलता, सूक्ष्मता एवम् अद्यतनता का प्रमाण देता हुआ विस्मय–विमुग्ध कर देता है। वाल्मीकि, कालिदास, श्रीहर्ष आदि संस्कृत के शीर्षस्थ कवियों का सूक्ष्म परिचय देते हुए और पाठक को उनकी रमणीय सूक्तियों के रस सागर में निमज्जित करते हुए लेखक आधुनिक कालखण्ड में प्रवेश करता है और गाँधी जी के रामराज्य की अवधारणा पर वाल्मीकि आदि पूर्व–सूरियों के अवदान का अद्‌भुत एवं पुष्ट विवेचन प्रस्तुत करता है।

पं0 चतुर्वेदी को थोड़ा–बहुत जानने और उनके सम्पर्क में कुछ समय व्यतीत करने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को भी मिला है। चतुर्वेदी जी स्वभावतः बहुत विनोद प्रिय एवं सरस व्यक्ति हैं। उनकी यह सरसता न केवल उनके पूर्व प्रकाशित ग्रंथों ('परिहास–शतक', 'संस्कृत साहित्य के सुभाषित–रत्न कोश') में प्रस्फुटित हुई है, अपितु इस संकलन में चयनित और उद्‌धृत श्लोकों और उनकी मनोरम व्याख्याओं से भी परिपुष्ट एवं प्रमाणित है।

सरसता, सहजता एवं सरलता इन निबंधों के मुख्य गुण हैं। एक अन्य गुण भी जो सर्वत्र परिलक्षित होता है, वह है उनकी नीर–क्षीर विवेचनी प्रतिभा। किसी लेखक या रचना का विवेचन करते हुए 'सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु' की उक्ति के अनुसार वे उसके मुख्यतम–मुख्यतर पक्ष को लेकर ही वे उसे रेखांकित और उजागर करते हैं, क्योंकि उनका मुख्य प्रयोजन है संस्कृत साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं के प्रति सामान्य पाठक का ध्यान आकृष्ट कराना और उसके प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना जिससे वे अपनी इस प्राचीन साहित्यिक निधि के प्रति गौरव का अनुभव कर सके।

पं0 चतुर्वेदी के लेखों का यह संकलन उनके वर्षों के अध्ययन एवं संस्कृत वाङ्मय में किये गये परिश्रम का सुफल है। विषय–प्रतिपादन की उनकी शैली इतनी सहज, सरल एवं सरस है कि पाठक एक रोचक लघुकथा के रूप में इन निबंधों को पढ़ता हुआ, संस्कृत–साहित्य के रस–सरोवर में डुबकी लगाता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि संस्कृत के अनुरागी जन इन निबंध–रत्नों का समुचित मूल्यांकन करते हुए इन्हें आदर सहित ग्रहण करेंगे, क्योंकि इनसे उनकी अपनी ही प्रज्ञा और वाग्देवी अलंकृत और उद्दीप्त होगी। चतुर्वेदी जी को ग्रंथ के प्रणयन हेतु बधाई एवं ग्रंथ हेतु अनेकानेक शुभाशंसन।

गयाचरण त्रिपाठी

महामहोपाध्याय
डॉ. गयाचरण त्रिपाठी, पी–एच.डी., डी.आर.फिल्, डी.लिट्।
(राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित संस्कृत विद्वान्)
आचार्य एवम् अध्यक्ष, कलाकोश सं. विभाग
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, जनपथ, नई दिल्ली–1

प्रस्तावना

मैंने कई लब्ध प्रतिष्ठ और सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए देश के उच्चतम पदों तक पहुँचने वाले वयोवृद्ध जनों को जीवन के षष्ठ्योत्तर काल में यह कहते हुए पाया 'काश मैंने पहले संस्कृत पढ़ी होती और वाल्मीकि रामायण, महाभारत विशेषतः श्रीमद्भागवतगीता, उपनिषद साहित्य, अभिज्ञान शाकुन्तल, मेघदूत, शिशुपालवध और कादम्बरी को मूल संस्कृत में पढ़ सकते।' संस्कृत भाषा और साहित्य की प्राचीनता, उसकी विपुल विषय संपदा, उसका सौन्दर्य बोध, दर्शन में उसके उच्च शिखर, उसका विशाल भौगोलिक प्रसार और भारतीय समाज के क्रमिक विकास के इतिहास के रूप में उसका मूल्य ऐसे पक्ष है जिन्हें कोई भी प्रबुद्ध और भारतीय संस्कृति का जिज्ञासु व्यक्ति उपेक्षित नहीं कर सकता।

विडम्बना ही है कि सारे उत्तर भारत के तथा दक्षिण भारत में आंध्र, कर्नाटक और केरल के अधिसंख्य देशवासी अपने दैनिक व्यवहार की क्षेत्रीय भाषा में 70–80 प्रतिशत संस्कृत–प्रभूत शब्दों का प्रयोग करते हुए भी अपनी भाषा की मूल गंगोत्री को भूल गये हैं और अनेक भ्रान्तियों के अंधकार में जी रहे है। बहुत सारे लोग–अच्छे पढ़े लिखे लोग भी संस्कृत को केवल धर्म और अध्यात्म की भाषा समझते हैं। एक बड़ा शिक्षित वर्ग उसे विज्ञान विरोधी या विज्ञान विमुख मानता है। तथाकथित आधुनिक वर्ग संस्कृत को रूढ़िवादी और पुरातन की पोषक कहकर तिरस्कार से मुँह विचकाता है। ऐसे भी लोग हैं जो संस्कृत को सत्यनारायण की कथा और विवाह, मुण्डन आदि के अवसर पर मंत्रोच्चारण करने वाले बेचारे विप्रों की भाषा कहते हैं। ये धारणायें सर्वथा निर्मूल, अयथार्थ और भ्रामक हैं और उतनी ही हास्यास्पद हैं जैसे कोई कहे कि अंग्रेज़ी भाषा में केवल ईसाई धर्म की बातें लिखी हुई हैं, और कुछ नहीं है। अकाट्य और

अविचल सत्य यह है कि संस्कृत साहित्य में वह सब कुछ है जो विश्व के किसी भी समृद्ध साहित्य में है। काव्य, नाटक, प्रहसन, गणित, ज्यामिति, ज्योतिष, आयुर्वेद, शल्यशास्त्र, दर्शन, अध्यात्म, संगीत, नृत्य, इन्द्रजाल, कामशास्त्र, राजनीति, स्मृति सब कुछ। भारतीय दर्शन ने जो मौलिकता प्रदर्शित की और जो ऊचाइयाँ प्राप्त की, उससे सारा जगत परिचित है। उपनिषदों ने विद्याव्यसनी मुगल राजकुमार दारा शिकोह को अतिशय प्रभावित किया और उपनिषदों का अनुवाद पढ़कर जर्मन दार्शनिक शापेन हावर झूम उठा। शापेन हावर को अनिर्वचनीय शान्ति मिली। उन्होंने इसे स्वीकारा भी। उन्होंने कहा उपनिषदों ने मुझे इस जीवन में शान्ति दी है और वे ही मुझे मृत्यु के उपरान्त भी शान्ति देंगे।

यह पुस्तक संस्कृत की इसी विपुल और वैविध्यपूर्ण संपदा की एक झाँकी प्रस्तुत करने का उपक्रम है। ये लेख संस्कृत के विद्वानों के लिये नहीं हैं। ये उन सहस्रातिसहस्र संस्कृत प्रेमियों के लिये हैं जिन्हें संस्कृत के काव्यों और नाटकों में प्रगाढ़ रुचि है, किन्तु जो संस्कृत भाषा का ज्ञान न होने के कारण इस सुखसागर में अवगाहन नहीं कर सके।

संस्कृत भाषा की जीवंतता और उसमें पिछली दो शताब्दियों में हुए तथा वर्तमान काल में हो रहे विपुल और वैविध्यपूर्ण साहित्य के बारे में स्वल्प जानकारी भी न होने के कारण अनेक पढ़े लिखे लोग भी संस्कृत को मृत भाषा कह देते हैं। पर संस्कृत भाषाभाषी विदेशी विद्वान भी संस्कृत को मृत भाषा नहीं मानते। अमेरिका की पेन्सिलवेनिया यूनीवर्सिटी में व्याकरण के प्रोफेसर जार्ज कारडोना संस्कृत को एक जादुई भाषा कहते हैं। यह पूँछे जाने पर कि क्या संस्कृत मृत भाषा है, कारडोना प्रखर स्वर में कहते हैं 'कदापि नहीं।'

संस्कृत विद्वान सर विलियम जोन्स जो उस समय कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट के जज थे और जिन्होंने अंग्रेज़ी राज्य के प्रारम्भिक दिनों

में इस देश पर अंग्रेज़ी को थोपने के मैकाले के दुष्चक्र का प्रखर विरोध किया था, ने सन् 1784 में इसी प्रकार के स्वर में कहा था।

The Sanskrit language whatever be its antiquity, is of a wonderful structure; more perfect than the Greek, more copious than the Latin, and more exquisitely refined than either.

सर विलियम जोन्स के पश्चात् अनेक अंग्रेज़, फ्रेंच और जर्मन विद्वानों ने संस्कृत पढ़ी और उसमें शोध किये। संस्कृत में शोध का कार्य सबसे अधिक जर्मनी में हुआ। जर्मनी के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में संस्कृत विभाग स्थापित हुये और सभी में संस्कृत के प्रोफेसर नियुक्त किये गये।

विदेशी परिवेश और शिक्षा में पले पं० जवाहर लाल नेहरू भी संस्कृत की संपदा और जीवंतता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में वे लिखते हैं :–

Sanskrit is a language amazingly rich, efflorescent, full of luxuriant growth of all kinds, and yet precise and strictly keeping within the framework of grammar which Panini laid down two thousand six hundred year ago. It spread out, added to its richness, became fuller and more ornate, but always it stuck to its original roots.

I have no idea of the number of people who understood Latin in Dante's time, nor do I know how many understand Sanskrit in India today, but the number of these latter is still large, especially in the South. Simple Spoken Sanskrit is not very difficult to follow for those who know any of the present day Indo Aryan languages – Hindi, Bengali, Marathi or Gujrati.

मैं इस संदर्भ में नेहरू जी द्वारा डिस्कवरी ऑफ इंडिया में उद्धृत महान दार्शनिक मैक्समूलर को भी उद्धृत करना चाहता हूँ।

Such is the marvellous continuity between the past and

the present in India that inspite of repeated social convulsions, religious reforms and foreign invasions Sanskrit may be said to be still the only language spoken over the whole extent of that vast country. ......Even at the present moment, after a century of English rule and English teaching, I believe that Sanskrit is more widely understood in India than Latin was in Europe at the time of Dante.

संस्कृत में साहित्य सृजन की जो धारा पिछले 4000 वर्षों से अजस्र बहती रही है, वह अभी सूखी नहीं है। 19वीं और 20वीं शती में जो विपुल सृजन–विस्फोट संस्कृत साहित्य में हुआ है, उसका कुछ विवरण मैंने इस पुस्तक के एक लेख में देने का प्रयास किया है। आशा है कि सुधी पाठकों को वह रोचक और ज्ञानवर्धक लगेगा।

यह पुस्तक संस्कृत संपदा की एक झाँकी मात्र है। संस्कृत साहित्य के विद्वानों से विनम्र प्रार्थना है कि वे इन लेखों में संस्कृत के काव्यों और नाटकों की पाण्डित्यपूर्ण समीक्षा की खोज न करें। मुझे विश्वास है कि पाठकों के जिस वर्ग के लिये यह पुस्तक लिखी गयी है वह इससे अवश्य लाभान्वित होगा।

इस पुस्तक के प्रकाशन के मुख्य प्रेरणास्रोत हैं, मेरे अग्रज पद्मभूषण पं० रामकृष्ण त्रिवेदी, पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं पूर्व राज्यपाल गुजरात। मैं कदाचित् इस संस्कृत संपदा को लिये बैठा ही रह जाता यदि आदरणीय त्रिवेदी जी इसके प्रकाशन के लिये मुझे बार–बार प्रेरित न करते। त्रिवेदी जी वर्तमान युग के भोजराज हैं। वे परम विद्याव्यसनी, संस्कृतानुरागी और बहुश्रुत व्यक्ति हैं। उनकी प्रेरणा मूर्तरूप लेकर संस्कृत प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत है। मैं अन्तस्तल से उनका आभार व्यक्त करता हूँ। यद्यपि मैं जानता हूँ कि औपचारिक शब्दों से मैं उनसे उऋण नहीं हो सकता।

हिन्दी साहित्य के सुविख्यात हस्ताक्षर पं० श्रीलाल शुक्ल ने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर इस पुस्तक को पढ़ने और उस पर

परिचयात्मक टिप्पणी लिखने का कष्ट किया, इसे मैं अपने प्रति उनके प्रगाढ़ सौहार्द का एक और विस्तार मानता हूँ। श्रीलाल जी मेरे वाल्यसखा हैं और भ्रातृवत् हैं। अतः मैं आभार के पिष्टपेषित औपचारिक शब्द लिखकर उनके अनुग्रह का अवमूल्यन नहीं करना चाहता।

डॉ. शंकर दत्त ओझा संस्कृत के प्रखर पंडित और लेखक हैं। उनकी कृति 'संस्कृति की मंदाकिनी' और रघुवंश समीक्षा से विद्वद्गण परिचित हैं। ओझा जी ने मेरे अनुरोध पर इन लेखों की समीक्षा करके कुछ अच्छे सुझाव दिये। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

शिवम् प्रेस के स्वामी श्री शैलेन्द्र द्विवेदी ने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर बड़े मनोयोग और तत्परता से यह पुस्तक छपवायी और उसे आकर्षक कलेवर दिया। मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

प्रयागदत्त चतुर्वेदी
अरुणालोक, निरालानगर, लखनऊ

विषय सूची

संस्कृत भाषा का अध्ययन और अध्यापन क्यों ?

संस्कृत का अध्ययन और अध्यापन वर्तमान काल में कितना आवश्यक है और क्यों आवश्यक है, इस प्रकार की शंका कभी-कभी पढ़े लिखे लोगों द्वारा भी उठाई जाती है। सम्भवतः संस्कृत भाषा की जीवंतता और उसमें वर्तमान काल में हो रहे विपुल एवं वैविध्यपूर्ण साहित्य सृजन के बारे में सूचना और जानकारी का अभाव ही इस प्रकार ही शंकाओं के मूल में है।

संस्कृत भाषा और साहित्य का महत्व और उसका गौरव तथा मुख्य भारतीय और विश्व भाषाओं के बीच उसका स्थान एक विस्तृत विषय है और एक लघु लेख की सीमा में उसे नहीं बाँधा जा सकता। किन्तु मैं कुछ स्थूल विन्दुओं की ओर ध्यान आकृष्ट करूँगा।

संस्कृत शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पाणिनि की अष्टाध्यायी में आया। वैदिक युग में आर्य भाषा को जो संस्कृत ही थी, वैदिक भाषा कहा जाता था। वैसे तो कुछ विद्वान संस्कृत शब्द का अर्थ 'संस्कृतानाम् भाषा संस्कृतम्' इस प्रकार करते हैं. अर्थात् संस्कृत (सभ्य) जनों की जो भाषा है, वही संस्कृत है। किन्तु शाब्दिक अर्थों में संस्कृत का आशय है, जिसका संस्कार अर्थात् परिशोधन किया गया हो। इन्ही अर्थो में शब्द संस्कृत 'प्राकृत से भिन्न था। 'प्राकृत का अर्थ है जो अशुद्ध अथवा अपरिमार्जित रूप में हो। प्राकृत इसी कारण देश की जनसाधारण की बोलचाल की भाषा और संस्कृत मुख्यतः साहित्यिक भाषा के रूप में मानी गयी।

संस्कृत भाषा और उसके साहित्य की प्राचीनता, उसकी विपुल विषय संपदा, उसका सौन्दर्य बोध, दर्शन में उसके ऊँचे शिखर,

उसका विशाल भौगोलिक प्रसार तथा भारतीय समाज के क्रमिक विकास (evolution) के जिज्ञासु के लिए उसका महत्व,ये ऐसे पक्ष हैं जिन्हें इतिहास, भाषा, साहित्य, समाजशास्त्र और दर्शन का कोई भी विद्यार्थी या जिज्ञासु उपेक्षित नहीं कर सकता।

पुनश्च भारत भूमि पर जन्म लेने वाला कौन ऐसा व्यक्ति (स्वल्पशिक्षित व्यक्ति भी) होगा जिसके मन में कभी न कभी यह जानने की प्रबल इच्छा न उठती हो कि रामायण के रचयिता वाल्मीकि कौन थे, उनकी कृति विश्वविश्रुत रामायण कैसी है, या महामुनि वेदव्यास की महाभारत में क्या लिखा है। काश हमें संस्कृत का स्वल्प ज्ञान भी होता और हम इन कालजयी कृतियों रामायण और महाभारत को पढ़ सकते। यही स्थिति चाणक्य के अर्थशास्त्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी, कालिदास के जगतप्रसिद्ध अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक, और मेघदूत, कुमारसम्भव और रघुवंश काव्यों की तथा माघ के शिशुपालवध, भारवि के किरातार्जुनीयम् और बाणभट्ट की कादम्बरी की है।

यह सारा लोकोत्तर साहित्य संस्कृत में लिपिबद्ध है। मैंने अनेक वयोवृद्ध जनों को जीवन के षष्ठ्योत्तर काल में संस्कृत पठन पाठन का आरंभ करते देखा है।

सर्वप्रथम एक इतिहासकार के लिये संस्कृत साहित्य का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। संस्कृत भाषा और साहित्य में इस महाद्वीप–भारतवर्ष के निवासियों की चार हज़ार वर्षों की विचार धारा और मनःस्थिति का इतिहास लिपिवद्ध है। किसी युग का साहित्य शुद्ध इतिहास की अपेक्षा उसकी विचारधारा, विकास (evolution) और घटनाओं के बारे में अधिक विश्वसनीय होता है। इतिहास शुद्ध तिथियाँ दे सकता है। पर विचारधाराओं और सामाजिक उथल पुथल और परिवर्तनों को सही–सही अंकित नहीं कर पाता। साहित्य सम्भव है, शुद्ध तिथियाँ न दे सके; पर उसमें जो कुछ अंकित होता है, वह

अधिकांशतः सत्य और विश्वसनीय होता है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य ने 4000 वर्ष ईसा पूर्व से लेकर लगभग दसवीं शती तक भारतीय जाति के आह्लाद और हाहाकार को वाणी दी है। अपि च, इस लम्बी अवधि में संस्कृत साहित्य का वृहत्तर भारत और पड़ोसी राष्ट्रों जैसे तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, सीलोन, मलाया और मध्य एशिया के जीवन और विचार धारा पर गहरा प्रभाव पड़ा है। संस्कृत ईसवी पूर्व पहली शताब्दी के बाद बौद्ध धर्म के माध्यम से मध्य एशिया और सुदूरपूर्व में फैली। तदनन्तर दूसरी शताब्दी ईसवी के उपरान्त वह हिन्दू संस्कृति की वाहक बनकर दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में प्रविष्ट हुयी। संस्कृत के महाकाव्यों, नाटकों और काव्यों ने इन देशों को लिपि और साहित्य दिया। इस प्रकार संस्कृत ने न केवल भारतीय उपमहाद्वीप को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बांधा, अपितु समग्र दक्षिण पूर्व एशिया और सुदूरपूर्व को एक सांकृतिक छत्र की छाया दी। इसलिए संस्कृत साहित्य इतिहासकार के लिए—भारत के इतिहासकार एवं विश्व के इतिहासकार के लिए बड़े महत्त्व का है।

संस्कृत इन्डो यूरोपियन ग्रुप की सबसे प्राचीन भाषा है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि इस ग्रुप की प्राचीनतम् साहित्य कृतियाँ संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध है। यह सर्वविदित है कि ऋग्वेद के मंत्र इंडो—यूरोपियन ग्रुप साहित्य की प्राचीनतम कृति हैं। मैकडानेल ने तो और भी आगे जाकर यह लिखा है कि संस्कृत साहित्य विश्व की किसी भी अन्य साहित्यिक कृति की अपेक्षा मानवजाति की धार्मिक और दार्शनिक विचारधारा के विकास का सही सही चित्र प्रस्तुत करता है।

तीसरी बात यह है कि संस्कृत साहित्य में वह सब कुछ विद्यमान हैं–और प्रचुर मात्रा में विद्यमान है जो विश्व के किसी उत्कृष्ट साहित्य में है। काव्य, महाकाव्य, गीतकाव्य, नाटक (विभिन्न भेद, प्रभेद सहित) गद्य काव्य, लोक काव्य, शिक्षात्मक कहानियां, गणित, विज्ञान, ज्योतिष सब कुछ जो विश्व के किसी साहित्य में और

किसी विधा में है, वह संस्कृत में है। विधाओं की विविधता और सम्पदा की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का विशेष उच्च स्थान है। संस्कृत साहित्य में न केवल प्रचुर मात्रा में श्रव्य और दृश्य काव्य, अपितु राजनीति शास्त्र, गणित, ज्यामिति, ज्योतिष, आयुर्वेद, शल्यशास्त्र, संगीत, नृत्य, इन्द्रजाल, कामशास्त्र और अनेकानेक प्राविधिक विषयों पर प्रचुर साहित्य विद्यमान है। इतना वैविध्यपूर्ण और इतना प्राचीन साााहित्य कदाचित् ही किसी भारतीय अथवा विश्व की भाषा में उपलब्ध हो।

मात्रा की दृष्टि से (quantitively) देखें तो भी संस्कृत साहित्य जो इस समय बच रहा है, इतना विशाल है कि ग्रीस और रोम के सम्मिलित साहित्य के बराबर होगा। यदि इसमें वह साहित्य भी जोड़ दिया जाय जिसका सन्दर्भ पुस्तकों में मिलता है किन्तु जो सम्भवतः नष्ट हो गया है, तो यह मात्रा इतनी विपुल होगी कि शायद वर्तमान अमेरिकन और इंग्लिश साहित्य भी उसकी समानता न कर सके।

पुनश्च, न केवल विस्तार और वैविध्य में, अपिच गुणात्मक मूल्य की दृष्टि से भी संस्कृत भाषा और साहित्य अन्य भारतीय और विश्व भाषाओं से ऊपर है। विन्टरनीज़ ने अपनी पुस्तक (History of Indian Litrature) मैं लिखा है कि सूत्र साहित्य (Aphorism) में भारतीयों ने जो दक्षता प्राप्त की है, वह किसी अन्य जाति ने नहीं प्राप्त की। भारत की प्राचीन लोक कथाओं और जन्तु कथाओं (fables) ने प्राचीन संसार के इतिहास पर काफी प्रभाव डाला है। विन्टरनीज़ ने पुनः लिखा है कि क्राइस्ट के जन्म के सदियों पूर्व भारत वर्ष में व्याकरण का विषय पढ़ा जाता था और इस विज्ञान अर्थात् व्याकरण में प्राचीन युग के सभी राष्ट्रों में भारत का स्थान सबसे आगे है। रस का सिद्धान्त संस्कृत अलंकार शास्त्र की ही देन है।

जार्ज कारडोना अमेरिका की पेन्सिलवेनिया यूनिवर्सिटी में व्याकरण के प्रोफेसर हैं। वे पाणिनीय अष्टाध्यायी के टीकाकार हैं। आठ खण्डों

(Volumes) में उनकी पुस्तक Panini his work and its traditions कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित हुई है। कार्डोना कहते हैं कि नोमचाम्सकी आधुनिक भाषा विज्ञान के महानतम व्यक्ति हैं, परन्तु पाणिनि जो ईसवी पूर्व पाँचवी शती से पहले हुये, चोम्सकी से उच्चतर पीठ पर हैं। जार्ज कार्डोना के अनुसार संस्कृत भारत देश की महान परंपरा में जन्मी जादुई भाषा है। कोई भी भारतीय उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। संभवतः आजकल उसके अध्यापन की विधि दोषपूर्ण है। उसे एक सुखद अनुभव बनाने की आवश्यकता है। यह पूँछे जाने पर कि क्या संस्कृत मृतभाषा है, जार्ज कार्डोना ने प्रखर स्वर में कहा, कदापि नहीं'।'

पाँचवीं बात वह है जिसका प्रारम्भ में ही मैंने संकेत किया था, अर्थात् संसार में धर्म और दर्शन के विकास (evolution) को जानने के लिए संस्कृत साहित्य का ज्ञान बिल्कुल अनिवार्य है। पुनः इन्डोयूरोपियन कुटुम्ब में केवल भारतीयों ने संसार को एक महान राष्ट्रीय धर्म दिया–ब्राह्मण धर्म या सनातन धर्म, और एक महान विश्व धर्म दिया – बौद्ध धर्म। अन्य जातियों ने कोई मौलिकता दिखाने की बजाय दूसरी जातियों और राष्ट्रों के धर्मों को अपनाया। भारतीय दर्शन ने जो मौलिकता प्रदर्शित की और जो ऊँचाइयाँ प्राप्त कीं, वे अन्यत्र नहीं दिखतीं और इसका सारा अभिलेख संस्कृत भाषा और साहित्य में ही संगृहीत है। 18वीं शती के अन्तिम दशकों में य़ोरोपीय विद्वानों ने संस्कृत की खोज की। यह एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक घटना थी। इसके बाद तुलनात्मक भाषा विज्ञान और तुलनात्मक मैथोलाजी का अध्ययन प्रारम्भ हुआ और पाश्चात्य दर्शन पर नयी ज्योति पड़ी। संस्कृत की खोज के पूर्व पश्चिम के भाषा विदों का यह विचार था कि होब्रू, अरेबिक और कुछ अन्य भाषायें मौलिक भाषायें है और अन्य सभी भाषाओं ने उन्हीं से जन्म लिया था। किन्तु इससे पूरी बात स्पष्ट नहीं होती थी, क्योंकि लैटिन और ग्रीक न तो मौलिक भाषायें थी, और न हीब्रू या अरेबिक–सम्भवा थीं। संस्कृत की खोज

ने यह स्पष्ट कर दिया कि संस्कृत अनेकानेक विश्व भाषाओं को जननी या बड़ी बहन है। तदुपरान्त तुलनात्मक भाषा विज्ञान में शोध जारी रहे। कालान्तर में रास्क और ग्रिम ने यह खोज की कि ट्योटोनिक (Tentonic) भाषायें भी इण्डो यूरोपियन ग्रुप की ही भाषायें हैं, जैसे अम्बियन, ओस्कन, अल्बानियन, लिथूनियन, आरमेनियन आदि।

संस्कृत साहित्य का प्रभाव पाश्चात्य दर्शन पर भी काफी पड़ा। भारतीय विचारधारा के गम्भीरतम विचारों का निचोड़ उपनिषदों में संकलित हुआ। दारा शिकोह ने 17वीं शती के मध्य में उपनिषदों का अनुवाद परशियन में कराया। तदुपरान्त 1775 ई. के लगभग दुपेराँ (Du Perron) ने परशियन से उनका अनुवाद लैटिन में किया। यह बहुत बड़ी घटना थी, क्योंकि जब शापेनहावर (Shopenhover) ने इस पुनरनुवाद को पढ़ा तो वह झूम उठा। उसने कहा "उपनिषदों ने मुझे इस जीवन में शान्ति दी है और वे ही मुझे मृत्यु के उपरान्त भी शान्ति देंगे। "It has been the lolace of my life : it will be the solace of my death" उपनिषद जब एक बार यूरोप के साहित्य में घुसे तो उन्होंने पश्चिम के दर्शन को झकझोर दिया और उसे बड़ी सीमा तक प्रभावित किया। Histroy of Indian Litrature के विद्वान लेखक विण्टरनीज ने लिखा "यदि हम अपनी संस्कृति के भी प्रारम्भ और श्रोत को समझना चाहते हैं और यदि हम प्राचीनतम इण्डो–यूरोपियन संस्कृति को जानना चाहते हैं, तो हमें भारत जाना होगा, जहाँ इण्डोयोरोपियन जाति का प्राचीनतम साहित्य सुरक्षित है।

"(If we wish to learn to understand the beginnings of our own culture, if we wish to understand the oldest Indo-European culture, we must go to India, where the oldest literature of Indo-European People is preserved)"

पुनश्च विशुद्ध साहित्यिक रस के पिपासु जनों के लिये संस्कृत साहित्य से बड़ा कोई रससागर कदाचित् किसी भाषा के साहित्य में

नहीं मिलेगा। सुविख्यात कवियों कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, वाणभट्ट भवभूति को सारा भारत देश जानता है। किन्तु संस्कृत भाषा में रस प्रधान काव्य के सर्जकों की संख्या अनन्त है। उन सभी कवियों की नामावली प्रस्तुत करना भी कठिन है।

सामान्य जन अर्वाचीन संस्कृत साहित्य से पूर्णतः अपरिचित हैं। वे पंडितराज जगन्नाथ को संस्कृत वाङ्मय का अंतिम प्रतिनिधि मानकर वहीं संस्कृत सृजन की समाप्ति समझ लेते हैं।

संस्कृत में साहित्य सृजन की जो धारा पिछले 4000 वर्षों से अजस्र बहती रही है, वह अभी सूखी नहीं है। आधुनिक युग में 19वीं और 20वीं शताब्दी में जिस वैविध्यपूर्ण और विपुल संस्कृत साहित्य का सृजन हुआ है, उससे देश का अधिकांश शिक्षित समुदाय अनभिज्ञ है।

18वीं और 20वीं सदी के कालखण्ड में प्रचुर संस्कृत साहित्य सृजित हुआ है।

उदाहरणार्थ:

पण्डित अप्यय दीक्षित ने	104
रत्नखेट नीलकण्ठ दीक्षित ने	60
घनश्याम कवि ने	64
वेल्लंकोड रामराय ने	143
राधा मंगलम नारायण शांख्कीने	108
महामहो. लक्ष्मणसूरी ने	93
मधूसूदन ओझा ने	135 ग्रंथ लिखे।

इसके अतिरिक्त मथुरानाथ शास्त्री, महालिंग शास्त्री, पंडित क्षमादेवी राव, डा0 राघवन, अखिलानंदशर्मा. विधुशेखर भट्टाचार्य आदि ने प्रशंसनीय साहित्य सेवा की है।

मध्यकालीन युग के संस्कृत कवियों के द्वयर्थी और त्रयर्थी श्लेषबहुल महाकाव्यों की परम्परा में 19वीं सदी में कृष्णामूर्ति और चार्लाभाष्यकार शास्त्री ने अद्भुत भाषाधिकार प्रदर्शित करते हुए 'कंकणवध रामायण' नामक रचना की जिसमें 64 अर्थ निकलते हैं। माघकृत शिशुपालवंध का अनुकरण करते हुए वंशीधर शर्मा ने दुर्योधन नामक महाकाव्य लिखा। वामनकवि ने कादम्बरी के अनुरूप वीरनारायण चरित्र महाप्रबन्ध लिखा। कालिदास के महाकाव्य रघुवंश के आदर्श पर लक्ष्मणशास्त्री ने गुरुवंश और युवराज कवि ने भटवंश काव्य लिखे। वीरचरितों पर आधारित महाकाव्यों की रचना की संस्कृत साहित्य में बहुत पुरानी परम्परा है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्यकारों ने यह परम्परा अक्षुण्ण रखी है। 17वीं शताब्दी में रवीन्द्र परमानन्द ने छत्रपति शिवाजी पर शिवभारतम, 19वीं शती में कालिदास विद्या विनोद ने शिवचरितम्, आधुनिक बाणभट्ट अंविकादत्त व्यास ने शिवराजविजय गद्यकाव्य लिखे। श्रीधरवर्णेकर ने शिवराज्योदय महाकाव्य लिखा जो 1974 में साहित्य एकादमी द्वारा पुरस्कृत हुआ। रुद्रकवि ने 17वीं शताब्दी में जहाँगीरचरित लिखा। अंग्रेजी शासनकाल में कुछ लेखकों ने अंग्रेज शासकों की प्रशंसा में काव्य लिखे, जैसे बृजेन्द्रनाथ शास्त्री का विक्टोरिया चरितसंग्रह (1887) शौरीन्द्र मोहन टैगोर का विक्टोरिया महात्मम्यम्, राजवर्मा का आंग्लसाम्राज्य, गोपालआयंगर का एडवर्ड सौहार्द (1937)

कालिदास के मेघदूत की परंपरा में आधुनिक काल में अनेकानेक दूतकाव्य लिखे गये, जैसे हंसदूत, पवनदूत, चन्द्रदूत, हनुम्ददूत, गोपीदूत, पिकदूत, काकदूत, भ्रमरदूत, पान्थदूत, कोकिलसंदेश, कीरसंदेश, हंससंदेश, गरुड़संदेश, मयूरसंदेश आदि।

नवीन विषयों पर पलांदुशतक, होलिकाशतक, काफीशतक, चाहगीता सम्मार्जनीशतक, कलिविजनम आदि जैसे शतकों की रचना हुई है। जय देव के गीत गोविन्द के अनुकरण में गीतराघव, गीतगिरीश,

गीतगौरीपति, गीतरघुनन्दनम् राजगीतविलासः, कृष्णलीलातरंगिणी आदि गीतकाव्य लिखे गये।

जयपुर के भट्टमथुरानाथ शास्त्री ने साहित्य वैभव में गज़ल, ठुमरी, दोहा, चौपाई, कविता, सवैया आदि गेय छन्दों में प्रचुर रचना की है।

श्री नारायणशास्त्री ने आधुनिक युग में 93 संस्कृत नाटक लिखे हैं और राधामंगलम् नारायणशास्त्री जी ने 108 पुस्तकें लिखी हैं।

देश के सामान्य शिक्षित वर्ग में यह भ्रम व्याप्त है कि आधुनिक युग में संस्कृत का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। उसमें कोई जीवन नहीं है। उसमें कोई नया सृजन नहीं हो रहा है। वह सोई हुई भाषा है। वस्तु स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। वास्तव में पिछली दो सदियाँ और 18वीं सदी का अन्तिम चरण संस्कृत काव्य के पुनर्जागरण का युग सिद्ध हुआ है। विगत 225 वर्षों में विपुल संस्कृत साहित्य सृजित हुआ है, इतना अधिक कि अन्य भारतीय भाषाओं को संस्कृत से ईर्ष्या हो सकती है।

आधुनिक काल में प्राचीन और अनेक नई विधाओं में पुष्कल रचनायें हुईं। खण्ड काव्य, लघु काव्य, शतक, लहरी, चित्रकाव्य, नीति, सूक्त, बालकाव्य, दूतकाव्य, अन्योक्ति काव्य, हास्य व्यंग्य काव्य, प्रकृति काव्य, अनूदित काव्य सभी विधाओं में 19वीं और 20वीं सदी में प्रचुर रचना संस्कृत में हुई है। पारंपरिक काव्य भी लिखे गये, जैसे हेमचन्द्र राय का 'परशुरामचरितम्', स्वयं प्रकाश शर्मा शास्त्री का 'इन्द्रमक्षीयं काव्यम्' वेलणकर जी का 'विष्णुवपिनम्। राष्ट्रीय रचनाओं में पी. गोपालकृष्ण भट्ट का महारानी झांसी लक्ष्मीबाई काव्य, क्षमाराव का 'सत्याग्रह गीता', 'उत्तर सत्याग्रह गीता' और 'स्वराज्यविजय', श्रीधर भास्कर वर्णेकर की 'श्रमगीता' डा. रमाकान्त शुक्ल का 'भाति में भारतम्', 1962 में भारत चीन युद्ध, 1965 के भारत पाक युद्ध और

1971 के बंगलादेश युद्ध पर रचित 'वीरोत्साहवर्धनम्', 'वंगलादेशः' और 'वीरतरंगिणी' उल्लेखनीय हैं।

अन्योक्ति काव्य सदा से संस्कृत साहित्य में प्रचलित रहा है। अन्योक्ति विधा में रचे गये काव्य का संस्कृत साहित्य में विपुल भाण्डार है। अर्वाचीन काल में रामकरण शर्मा में 'वीणा', 'सन्ध्या' और 'शिवशुकीयम्', अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने 'आर्यान्योक्तिशतकम्' और पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित ने अन्योक्तरंगिणी काव्यों की रचना की है।

पाठकों को यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि अंग्रेजी साम्राज्य और अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर घटित हो रही घटनाओं एवं इस युग के महापुरुषों के संपर्क में आकर संस्कृत के लेखकों/कवियों ने ऐसी रचनायें आधुनिक युग में की जिनकी आप कल्पना नहीं कर सकते। केरलवर्म कोइतवुरान ने ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया पर 'विक्टोरिया चरितम्', शिंवरामपाण्डेय ने "एडवर्ड राज्याभिषेक दरबारम्" और जार्जाभिषेक दरबारम्, राधा कृष्ण गोस्वामी ने प्रिंस ऑफ वेल्स के विवाह पर "वैवाहिक वर्णनम्, "पद्म शास्त्री ने 'लेनिनामृतम्'", केवलानन्द शर्मा ने 'लेनिन–कुसुमांजलिः', शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी ने 'कार्लमार्क्स–चरितम्', पं. रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने मैक्सिम गोर्की पंचशती" और बंगला देश के जन्म पर रमेश चन्द्र शुक्ल ने 'बंगला देशः' काव्य लिखे। हर्ष देव माधव ने "जापान देशे, 'मिश्रदेशे' कवितायें लिखीं।

आधुनिक काल में लिखे गये शतक काव्यों की लंबी सूची है। पं. गिरिधर शर्मा कृत 'गिरिधर शप्तशती', शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी की 'स्फूर्ति सप्तशती,' डा. राजेन्द्र मिश्र कृत 'अभिराज शप्तशती' उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में शतक रचे गये। उपदेशं शतकं, शक्ति शतकं, कृष्ण शतकं, भास्कर शतकं, भारत शतकं, सार शतकं, सिनेमाशतकं, विज्ञान शतकं, परिहास शतकं, वाणी शतकं, सर्वमंगला शतकं, इन्द्रिा शतकं, अनुभव शतकं आदि।

लहरी काव्य भी प्रचुर संख्या में लिखे गये।

श्रृंगार रस के भी अनेक उत्कृष्ट काव्य आधुनिक युग में लिखे गये हैं। महेश चन्द्र तर्क चूड़ामणी का 'श्रृंगार काव्यानि', गंगाधर शास्त्री का 'विलास गुच्छाः', 'भामा विलासः' और अपराध मार्जनम्' बृजरत्न भट्टाचार्य का प्रमोद विलासः' रंगाचार्य का 'श्रृंगारनायिका तिलकं' और विधु शेखर का 'यौवन विलासः' उल्लेखनीय है।

महाकाव्यलेखन :

संस्कृत साहित्य में आधुनिक युग में सर्वाधिक सृजन–विस्फोट महाकाव्य विधा में हुआ। डॉ. हीरालाल शुक्ल एवं डॉ. जगन्नाथ पाठक के अनुसार आधुनिक युग में महाकाव्य लेखन का आरम्भ 18वीं सदी के उत्तरार्ध में रचित महाकवि रामपाणिवाद के "राघवीयम्' महाकाव्य से हुआ। 'राघवीयम्' रामकथा पर आधारित 20 सर्गों में आबद्ध महाकाव्य है जो महाकाव्य की शास्त्रीय परम्परा को निभाता हुआ आधुनिकता की झलक देता है। 18वीं शदी के अन्य महाकाव्य हैं "जगजीवन भट्ट का ऐतिहासिक "अजितोदय", मध्य प्रदेश के रूपनाथ झा के दो महाकाव्य "श्री रामविजय" और 'गढेश नृप वर्णनम्', विश्वेसर वर्णेय का 'लक्ष्मी विलास', केरल के शुभ्रमयं का पद्मनाभ विजय, केरल के ही आरुल माधवन का "उत्तर नैषधम्' और श्याम भट्ट भारद्वाज का ऐतिहासिक महाकाव्य "चालुक्य राजअय्यणवंश चरितम्।

उन्नीसवीं सदी में केरल के राजकवि गोदवमं युवराज और कोच्चुण्णिराज द्वारा श्री राम चरितम् नाम के वृहत् महाकाव्य की रचना हुई। पुण्डरीकपुर के कवि चण्डीदास ने रामकथा पर आधारित रघुनाथगुणोदय महाकाव्य 13 सर्गों में लिखा। सीताराम महपर्वणीकर ने अनेक शास्त्रीय ग्रंथों के अतिरिक्त चार महाकाव्य "नृपविलास नलविलास, जयवंश और राघवचरित्रम् लिखे। जयवंश महाकाव्य डॉ. पट्टाभिराम शास्त्री द्वारा संपादित होकर राजस्थान विश्वविद्यालय

से प्रकाशित हुआ है। इस सदी के अन्य महाकाव्य कारों में काशी के पं. शिवकुमार मिश्र ने दरभंगा नरेश वंशावली लक्ष्मीश्वर प्रताप महाकाव्य लिखा। केरल के ए.आर. राजराजवर्मा ने संस्कृत में आंग्लसाम्राज्यम् नाम का 23 सर्गों वाला महाकाव्य लिखा। पूर्वी बंगाल के नोआरवाली के अन्नदाचरणतर्कचूड़ामणि ने दो महाकाव्य 'रामाभ्युदयम्' और 'महाप्रस्थानम्' और मैसूर के सी.एन. रामशास्त्री ने मैसूर के महाराज कृष्णराजवाडियर पर "कृष्णराजाभ्युदय महाकाव्य लिखा और "सीतारावण संवादझरी, नामक एक अनोखा चित्रकाव्य लिखा। उड़ीसा के महाराज विश्वनाथ देव वर्मा ने रूक्मिणी परिणयं महाकाव्य की रचना की।

बीसवीं सदी में संस्कृत में रचे गये, महाकाव्यों की सूची बहुत लम्बी है। जिस बड़ी संख्या में और जिन विविध विषयों के लेकर इस सदी में संस्कृत महाकाव्य लिखे गये, उससे हिन्दी और अंग्रेजी का सुशिक्षित समुदाय भी अनभिज्ञ है। इन सारे संस्कृत महाकाव्यों का विवरण इस लेख की सीमा में संभव नहीं है। किन्तु संस्कृत भाषा और साहित्य की जीवंतता और उपयोगिता के बारे में देश के शिक्षित समाज में व्याप्त दुर्भाग्यपूर्ण भ्रान्ति और अज्ञान के दूर करने के उद्देश्य से मैं इन महान कृतियों का संक्षिप्त विवरण दे रहा हूं। मेरा विश्वास है कि यह संक्षिप्त विवरण भी पाठकों के लिये एक सुखद आश्चर्य होगा।

उत्तर प्रदेश के बदायूँ ज़िले के पं. अखिलानंद शर्मा ने आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द को नायक बनाकर 21 सर्गों का एक महाकाव्य "दयानन्द दिग्विजय" इसी बीसवीं सदी के प्रारंभ में लिखा। स्वामी दयानंद को लेकर दिलीपदत्त शर्मा और मेध व्रताचार्य ने भी महाकाव्य लिखे। मेधव्रत ने स्वामी दयानंद के गुरु स्वामी विरजानन्द पर भी दस सर्गों का एक काव्य लिखा।

बीसवीं सदी के संस्कृत कवियों में एक सुविख्यात नाम पंडित क्षमाराव (1890–1954) का है जिन्होंने महाराष्ट्र के तीन महान संतों

संत तुकाराम, गुरु रामदास और संत ज्ञानेश्वर पर महाकाव्य लिखे। इसके अतिरिक्त क्षमाराव ने महात्मा गांधी को लेकर ''स्वराज्यविजय'' काव्य लिखा।

महात्मागांधी के जीवन और स्वतत्रता सघर्ष पर पंजाब के भगवदाचार्य ने 1951 में बृहत श्री महात्मागांन्धिचरित'' महाकाव्य लिखा जो तीन भागों में विभक्त है।'' भारत पारिजात 'पारिजातापहार' और 'पारिजातसौरभ' ''भारत पारिजात'' में गांधी जी के जन्म से लेकर उनके दांडी मार्च तक का वर्णन हैं यह 25 सर्गों का महाकाव्य है। दूसरे काव्य 'पारिजातपहार' में 1942 के ऐतिहासिक भारत छोड़ो आन्दोलन का वर्णन है। इसमें 29 सर्ग हैं। तीसरे महाकाव्य पारिजात सौरभ' में गांधी जी की दुखद हत्या तक की घटनाओं का वर्णन है।

युगपुरुष और भारत के राष्ट्रपिता पर लिखे गये इन संस्कृत महाकाव्यों के लिये पंडिता क्षमाराव और कवि भगवदाचार्य सदा याद किये जायेंगे।

बीसवीं सदी की एक और रचना उल्लेख योग्य है। वह है वाराणसी के पं. काशीनाथ द्विवेदी का 'रुक्मिणी हरण' महाकाव्य। पं. जगन्नाथ पाठक का कथन है कि 21 सर्गों में आबद्ध इस महाकाव्य में कवित्व और वैदुष्य का मणिकांचन वर्णन सहज ही सहृदय पाठक को मुग्ध कर लेता है।

इस काल की रचनाओं में पं. विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र का कर्णार्जुनीयम् और हरदोई जिले के गोस्वामी बलभद्रप्रसाद शास्त्री का कर्णाभिजात्यम् भी उल्लेखनीय है। बलभद्रप्रसाद शास्त्री जी ने जवाहर लाल नेहरू पर नेहरूयशःसौरभम् और दूतांजनेयम् सहित कई काव्य लिखे हैं जो उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थानसे पुरस्कृत भी हुये हैं।

बीसवीं सदी के कवियों में अन्य उल्लेखनीय नाम है, पं. सत्यव्रत शास्त्री, पं. रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रभुदत्त स्वामी, श्रीधर भास्कर वर्णेकर और डॉ. राजेन्द्र मिश्र। सत्यव्रत शास्त्री और अभिराज राजेन्द्र मिश्र

को साहित्य एकेडमी द्वारा पुरस्कृत किया गया है। दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में दीर्घकाल तक कार्यरत रहे, सत्यव्रत शास्त्री जी ने संस्कृत साहित्य को बहुत कुछ दिया। उन्होंने तीन महाकाव्य लिखे, श्री बोधिसत्व चरित, इन्दिरागांधी चरितम् और श्रीराम कीर्ति। श्री रामकीर्ति महाकाव्य थाईलैण्ड की रामायण पर आधारित है। शास्त्री जी की एक रचना श्री गुरुगोविन्द सिंह चरित पर उन्हें वर्ष 1968 का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

सत्यव्रतशास्त्री जी के 'इन्दिरागांधी' महाकाव्य में छोटे–छोटे 25 सर्ग हैं और पं. मोतीलाल नेहरू के आनन्द भवन में जन्म से लेकर देश की राजनीति में प्रवेश करने तक और पुनः सन् 1976 तक की घटनाओं का वर्णन है। अन्तिम पांच सर्गों में इन्दिराजी के व्यक्तित्व का बहुत अच्छा प्रस्तुतीकरण हुआ है।

बीसवीं सदी की कालावधि में पं. भोलाशंकर व्यास और पं. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी ने भी संस्कृत साहित्य को कई महाकाव्यों से अलंकृत किया। व्यास जी का शक्तिनयम् महाकाव्य दुर्गासप्तशती की कथावस्तु पर लिखा गया है।

पं. रेवा प्रसाद द्विवेदी के दो महाकाव्य सीताचरित और स्वातन्त्र्यसम्भव आधुनिक युग में बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में लिखे गये। स्वतंत्र्यसम्भव एक वृहत महाकाव्य है। इसमें 28 सर्ग हैं। यह एक राष्ट्रीय महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमें झांसी की रानी लक्ष्मीबाई से लेकर इंदिरा गांधी जी के काल तक की घटनाओं का अद्भुत वर्णन है। इस रचना ने द्विवेदी जी को आधुनिक कवियों में एक ऊँचे पीठ पर आसीन किया है और संस्कृत भाषा की जीवंतता का तुमुल उद्घोष किया है। रेवा प्रसाद द्विवेदी जी साहित्य अकादमी और के.के. विरला फाउन्डेशन से भी पुरस्कृत हुये हैं।

आधुनिक युग का एक अन्य प्रख्यात नाम है नागपुर के श्रीधर भास्कर वर्णेकर का। श्री वर्णेकर नागपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत

विभाग में लंबे काल तक कार्यरत रहे। उन्होंने संस्कृत साहित्य की अनेक विधाओं में लेखन किया और संस्कृत भवितव्यम् पत्रिका का संपादन किया। किन्तु वर्णेकर जी को उनके विशाल महाकाव्य श्रीशिवराज्योदय से बड़ी ख्याति मिली। 68 सर्गों का यह महाकाव्य शारदा गौरव ग्रन्थ माला पूना से 1972 में प्रकाशित हुआ और इस पर उन्हें साहित्य एकेडमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। कवि ने महाकाव्य के नायक छत्रपति शिवाजी के ऐतिहासिक महत्त्व, उनके उज्जवल चरित्र और उनके शौर्य को बड़े कौशल से उजागर किया है। शिवाजी प्रतिज्ञा करते हैं।

किं जीवितेन विभवेन सुखेन तेन किं भारभूतकरवालधंनुः कृपाणैः

किं पौरुषेण यदि न प्रभवामि पातुं गोदेववेदवनिता द्विजसाधुसंधान्।

मेरे इस जीवन, वैभव, सुख और भारस्वरूप तलवार, धनुष, कृपाण और पौरुष से क्या लाभ यदि मैं गोवंश, वेद, वनिता, विप्र और साधुओं की रक्षा न कर सकूँ।

उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद के प्रभुदत्त स्वामी ने आधुनिक काल में पूर्वभारतम् तथा मौर्यचन्द्रोदयम्" दो महाकाव्य लिखे हैं। मौर्य–चन्द्रोदयम् महाकाव्य में मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और चाणक्य के महान व्यक्तित्व को बड़ी सफलता से उजागर किया गया है।

बीसवीं सदी के अन्तिम चरण में त्र्यम्बक भण्डारकर का महाकाव्य श्री विवेकानन्द चरित 1973 में प्रकाशित हुआ है जो एक अद्वितीय रचना है। इसमें विवेकानन्द जी के जन्म से लेकर रामकृष्ण परमहंस से उनकी भेंट, उनके संन्यासी जीवन का प्रारम्भ, भारतभ्रमण, शिकागो धर्मसभा में उनका चमत्कारी व्याख्यान, योरोप भ्रमण, भारत लौटकर रामकृष्ण मिशन की स्थापना सभी कुछ विशद रूप से वर्णित हुआ है। अभी हाल के वर्षों में 1990 में शिवप्रसाद भारद्वाज ने सरदार पटेल के जीवन पर एक वृहद काव्य लौहपुरुषावदातम् लिखा है।

सन् 1992 में कवि केदार ने वीर सावरकर पर स्वतंत्र वीर गाथा काव्य लिखा।

इसके अतिरिक्त अलीगढ़ के परमानन्द शास्त्री के दो महाकाव्य जन विजयम् और चीरहरणम् तथा अभिराज राजेन्द्रमिश्र के जानकीजीवनम् भी इसी सदी के चतुर्थ खण्ड में लिखे गये। बीसवीं सदी में जिन अन्य प्रख्यात कवियों ने अपनी कृतियों से संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया, वे हैं : केरल के पी.के. नारायण पिल्लई, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक पर महाकाव्य 'श्रीतिलकयशोऽर्णवः' के रचयिता पद्यमविभूषण श्री एम.एस. आणे, 'विन्ध्यवासिनी चरित महाकाव्य के रचयिता न्यायमूर्ति वसन्त त्र्यंबक शेवडे, और शुंभवध राधाचरित के रचयिता कालिका प्रसाद शुक्ल, बलिया के पं. रघुनाथ शर्मा, श्री गुरुनानकदेव चरित के रचयिता विष्णुदत्त शर्मा और कर्नाटक के के.एस. नागराजन। ऊपर के इन पृष्ठों में दिया गया विवरण संस्कृत में हो रहे आधुनिक सृजन का संपूर्ण लेखा नहीं है। किन्तु इससे वर्तमान काल में भी संस्कृत की जीवंतता और उसके विपुल सृजन के बारे में कोई संदेह नहीं रहना चाहिए।

पाश्चात्य साहित्य से सम्पर्क के बाद संस्कृत साहित्य में अनेक नयी विधायें भी आयी है, जैसे पत्रकारिता, जीवनी, लघुकथा (short story) उपन्यास, निबन्ध, व्यंग्य आदि।

पत्रकारिता—संस्कृत पत्रिकाओं ने वर्तमान युग में संस्कृत को जीवित रखने और युग के अनुरूप ढालने में सराहनीय कार्य किया है। इस दिशा में अग्रदूत कार्य वाराणसी के 'पंडित' और कोल्हा की 'सुनृतवादिनी' और 'संस्कृत चंद्रिका,' ने किया। अन्य प्रसिद्ध पत्रिकायें कलकत्ता की 'संस्कृत साहित्य परिषद पत्रिका,' और 'मंजूषा,' अयोध्या की 'साकेत' जयपुर की 'भारती' और बड़ौदा की 'सरस्वती सौरभ' थीं। इन पत्रिकाओं में न केवल कवितायें, लघुकथायें आदि प्रकाशित हुई, अपितु संक्षिप्त समाचार, हास्य, व्यंग्य, समकालीन

घटनायें आदि भी प्रकाशित हुये पत्रिकाओ के निबंधों के विषय–वैविध्य को देखकर अनेक पाठक स्तब्ध रह जायेंगे–उदाहरणार्थ :

1. जर्मनी में शिक्षा
2. आसन्न दुर्भिक्ष
3. भारतवर्ष की पशुसंपदा का ह्रास
4. संततिनिरोध (बर्थकंट्रोल)

इस समय भी देश में अनेक अच्छी संस्कृत पत्रिकायें नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है, जैसे वाराणसी से 'गाण्डीवम्', जयपुर से 'भारती' एवं 'स्वरमंगला,' हरद्वार से 'भारतोदयम्', शिमला से 'दिव्य ज्योति' कानपुर से 'पारिजातम्', लखनऊ से सर्वगन्धा, दिल्ली से 'संस्कृतम्' अहमदनगर से मुंजारवः।

इतिहास–आधुनिक अर्थों में जिसे इतिहास कहते हैं, वह पुराने संस्कृत साहित्य में नहीं लिखा जाता था। किन्तु वर्तमान युग में कई संस्कृत विद्वानों ने इतिहास की आधुनिक ढंग की पुस्तकें लिखीं, जैसे महामहोपाध्याय टी. गणपतिशास्त्री का भारतानुवर्णन, रामावतार शास्त्री का भारतीय इतिवृतम, काव्यकण्ठ गनपतिशास्त्री का भारतसंग्रह, श्रीपदशास्त्री का सिखगुरुचरितम्, व्यास का शिवराजविजय आदि।

जीवनी और आत्मकथा (Biography-autography) ये अपेक्षाकृत नवीन आधुनिक विधायें हैं। पर आधुनिक संस्कृत में इन विधाओं में अनेक रचनायें हुयी और पुरानी समास-बहुल अलंकारिक भाषा की पद्धति को छोड़ कर सरल वर्णनात्मक ढंग से जीवनवृत लिखे गये हैं। उदाहरणस्वरूप श्रीपदशास्त्री द्वारा भारतवीर रत्नमाला में पृथ्वीराज, शिवाजी और राणाप्रताप पर लिखे गये गद्य जीवन वृत्त, स्वामी दयानन्द पर रमनाचार्य का दयानन्दप्रभव और गंगाप्रसाद उपाध्याय का आर्योदयकाव्य, पंचगणेशशास्त्री का रामकृष्णपरमहंस की गद्यजीवनी, के.एस. नागराजन का विवेकानंद चरित,

श्री नीलकण्ठशास्त्री (त्रिवेन्द्रम) का जीससकाइस्ट पर संस्कृत गद्य में ईशुचरितम्। स्व. कृष्णराज बोडयार महाराज मैसूर पर लिखे गये अनेक काव्य जिनमें कोलार खान कावेरी डैम विद्युत योजना, जोगप्रपात आदि का वर्णन मिलता हैं। आत्मकथालेखन में कोरड रामचन्द्र कवि का स्वाध्याय काव्य, दुर्गानन्द स्वामी का विधोदम और मालाबार के स्वामी तपोवनम् का उत्कृष्ट संस्कृत गद्य में लिखा गया तपोवनचरितम् उल्लेखनीय हैं। संस्कृत की बहुमुखी विविधता और सार्वभौमिकता का एक उल्लेखनीय उदाहरण श्री गुंडूराव हरकारे द्वारा किया गया कुरानशरीफ़ का अनुवाद है।

निबंध

आधुनिक युग की परंपरा में संस्कृत ने भी निबंध, लघुकथा, उपन्यास और व्यंग्य को अपनाकर अपनी जीवन्तता का परिचय दिया है। हंसराज अग्रवाल ने 'संस्कृत प्रबंध प्रदीप' और श्रुतिकांत शर्मा ने 'लघुनिबंध मणिमाला' नामक निबंध संग्रह 1955 में लुधियाना से प्रकाशित किये। आप यह जानकर चकित होंगे कि श्री हंसराज के 'संस्कृत प्रबंध प्रदीप' में अत्याधुनिक और सामयिक विषयों जैसे काश्मीर समस्या, स्वतंत्रता के चार वर्षों में स्थिति, और हिन्दू कोडबिल पर संस्कृत में लेख संग्रहीत हैं। 'लघुनिबंध मणि माला' में तो और भी रोचक विषयों पर निबंध हैं : जैसे हुक्का, फुटबाल मैच, घोड़े और साइकिल का संवाद, तीसरे डिब्बे का सफर, यू.एन.ओ., चुनाव और मंत्री, सिनेमा आदि। चामराजेन्द्र संस्कृत कालेज बंगलौर ने 1958 में निबंधों का संग्रह 'प्रबंधपारिजात' प्रकाशित किया जिसमें अत्याधुनिक विषयों जैसे पंचशील, संततिनिग्रह, वृहत्तर मैसूर पर संस्कृत निबंध लिखे गये हैं।

लघुकथा

संस्कृत साहित्य में आधुनिक धारा सर्वाधिक लघुकथा के क्षेत्र में

बहती हुयी दृष्टिगोचर हुई। लघुकथा संस्कृत साहित्य के लिये नयी चीज नहीं है। पर आधुनिक रूप की लघुकथा पश्चिम की देन है। बीसवीं शती के प्रारंभ से ही संस्कृत पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित होती रही है :

1. भवभूत विद्यारत्न की 'लीला' (1923–24)
2. तरणाकान्त चक्रवर्ती की 'पुष्पांजलि' (1924–25)
3. ऐन्द्रजालिक–(1932)
4. रसमयी (1933–34)
5. भामिन्याः मदनतापः (1955) के.आर. शंकरनारायणन शास्त्री द्वारा (On the young wife of an old man)
6. कस्यायमपराधः (1967) वरदराजशर्मा–जो विधा और चित्रमय प्रस्तुतीकरण में अद्वितीय है।
7. 'नगरपरिचलनसभा' रंगाचार्य का स्किट जिसमें एक वृद्धा महिला नगरपालिका चुनाव के लिये खड़ी होती है।
8. प्रश्नोहरः
9. दुखिनीवाला
10. नीरसप्रणय
11. आदर्शदंपति
12. 'सरला'
13. 'साक्षी'
14. 'अयमेव प्रेम परिपाकः'
15. 'करुणा'
16. 'वरेप्सु वटुक संवाद,' (भावी श्वसुर और जामाता का संवाद)
17. 'षिशाख'
18. प्रमोदगृहम्'

इसके अतिरिक्त एस. वेंकटरामशास्त्री ने गद्य में सौ लोकप्रिय

कथायें लिखीं। वेतारव्यरायणयाजवन ने गद्य काव्य में अनेक कहानियाँ लिखीं। पं शिवराम शास्त्री ने महाकाव्यों, पुराणों आदि से विषय लेकर दो. ग्रंथ प्रकाशित किये। वी. अनंताचार्य, महालिंगशास्त्री आदि ने भास, कलिदास आदि के नाटको की कथायें गद्य में प्रकाशित कीं।

उपन्यास

उपन्यास के क्षेत्र में भी आधुनिक संस्कृत ने प्रयोग किये है। अनुवाद और मौलिक रचनायें दोनों द्वारा। अप्पाशास्त्री ने बंकिमचन्द्र की 'लावण्यमयी' और हरिचरण ने 'कपाल कुंडला' का संस्कृत में अनुवाद किया।

मौलिक संस्कृत उपन्यासों में उल्लेखनीय हैं :

1. नरसिंहाचार्य पुनेकर का 'मृतिकावृषभकथा'
2. बलभद्र शर्मा का 'भोगिनीवामा'
3. उपेन्द्रनाथसेन का 'पल्लिछवि', मकरन्दिका' और कुन्दमाला
4. हरिदास सिद्धान्त बागीश का 'सरला'
5. रेणुदेवी का 'रजनी'
6. काव्यकणानपति शास्त्री का 'पूर्ण'
7. विधुशेखर का चन्द्रप्रभा
8. मेधव्रत का 'कुमुदिनीचन्द्र'
9. नरसिंहाचार्य का सौदामिनी

व्यंग ओर प्रहसन–इन विधाओं में भी आधुनिक संस्कृत में रचनायें हुयी हैं। सहस्रबुद्धे ने मेघसंदेश की पेरोडी के रूप में "काकदूत" लिखा। राजगोपाल आयंगर ने "काकदूत" और कृष्णमूर्ति शास्त्री ने "शुनाकदूत" लिखा जिसमें एक चोर श्वान को अपनी प्रियतमा के पास संदेश लेकर भेजता है।

जयपुर के कृष्णराय ने प्याज़ पर "पलन्दुशतक" काव्य लिखा है। एक कवि ने झाडू पर "मार्जनी" नामक स्तुति काव्य लिखा।

के.वी. कृष्णमूर्ति शास्त्री ने खटमल पर "मतकुणाष्टक" लिखा। पुलिनविहारी दास ने भी एक "मत्कुणाष्टक" लिखा। मशक पर अनेक कवियों ने लिखा है। सी.आर. सहसुबुद्ध ने चाय पर "चाहगीता" काव्य लिखा है। ऐत्रेय ने काफी पर 16 छंदों की "काफीषोडसिका" लिखी। अप्पा शर्मा ने पेट की स्तुति पर "उदरप्रशस्ति" कविता लिखी है। डी.टी.ताताचार्य ने "कवीनाम् उपवासः" काव्य में पाखंडियों पर व्यंग किया है।

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कनौजिया ब्राह्मणों पर "कान्यकुब्ज–लीलाकूत" व्यंग लिखा।

एस.एस. खोट ने "मलभविषायम्" और "लीला वैद्यम" नामक एकाकियों में अधकचरे ज्योतिषियों और डाक्टरों का मजाक उड़ाया है। खोट ने दो और व्यंग्य "ध्रुवतारा" और "हा हन्त शारदे" लिखे हैं।

नाटक–संस्कृत नाटक बहुत बड़ी संख्या में आधुनिक काल में लिखे गये हैं।

श्रीनारायण शास्त्री ने अकेले 93 नाटक लिखे हैं। पुराने सुविख्यात classics से विषय वस्तु लेकर अनेकानेक नाटक वर्तमान युग में लिखे गये।

मैसूर के जम्मू व कुलभषण के "प्रसन्नकश्यपीय" में दुष्यन्त शकुन्तला पुत्र भरत के साथ कण्व ऋषि के आश्रम की यात्रा पर जाते हैं। जेघटी.–पारिख के "छायाशाकुन्तल" का भी यही मोहक विषय है।

महालिंग शास्त्री ने सात अंकों में "कलि प्रादुर्भाव" नाटक लिखा जिसमें कलियुग के आगमन पर तत्काल दुराचारों का प्रसार प्रारम्भ हो जाता है। उनका "उभयरूपक" एक सामाजिक सुखांत नाटक है। तंजौर के सुंदरेश शर्मा ने "प्रेम विजय" नाटक लिखा।

विख्यात ऐतिहासिक व्यक्तियों पर भी संस्कृत में नाटक लिखे गये :

महामहोपाध्याय मथुरा प्रसाद दीक्षित थे 1937 में राणा प्रताप सिंह पर "वीर प्रताप" नाटक लिखा। एम.एम. याज्ञिक ने "संयोगिता स्वयंबर", "छत्रपति साम्राज्य" और "प्रतापविजय" तीन नाटक लिखे।

सुदर्शनपथी ने "सिंहल विजय" और पंचाननतर्करत्न ने "अमर मंगल" लिखा। वी. राघवन ने शहजादा सलीम और दासी पुत्री अनारकली की प्रसिद्ध प्रणय कथा पर–अनारकली" नाटक लिखा है।

क्षमाराव ने "बाल विधवा" सामाजिक नाटक लिखा। पुण्यश्री नीलकंठ शर्मा ने "गैर्वाणीविजय" नामक एक विचित्र नाटक लिखा है जिसमें ब्रह्मा, सरस्वती और ऋषिगण संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषायें पात्र बनकर आती हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्य में शेक्सपियर के अनेक नाटकों का रूपांतर संस्कृत में हुआ :

1877 में श्री शैलदीक्षितार ने "दी कामेडी आफ एरर्स" का संस्कृत अनुवाद "भ्रान्तिविलास" नाम से प्रकाशित किया था। त्रिवेन्द्रम के राजराजवर्मा ने ओथेलो (Othelo) की अनुकृति लिखी। आर. कृष्णमाचार्य ने "मिडसमर नाइट्स ड्रीम" का अनुवाद "वासन्तिक स्वप्न" लिखा है। (1892) इस ड्रामा के और भी अनुवाद संस्कृत में हुये हैं। "ऐज यू लाइक इट" का अनुवाद "यथाभिमतम्" के नाम से हुआ है। चार्ल्स लैम्ब की "टेल्स फ्राम शेक्सपियर" का अनुवाद एम. बंकटरमनाचार्य ने किया है।

गेटे के सुप्रसिद्ध नाटक "फाउस्ट" (Faust) का अनुवाद पूना के एस.एन. ताडपत्रीकर ने "विश्वमोहन–नाम से किया है।

एकांकी–नये युग में "संस्कृत में" एकांकी नाटक भी लिखे गये हैं।

Farce अर्थात प्रहसन संस्कृत ड्रामा में पहले से ही चला आ रहा है। नये संस्कृत एकांकियों में विविध आधुनिक विषय लिये गये है। पी.के. वरदराज शर्मा ने नवबधू के आत्मसंलाप के रूप में एक

सुन्दर एकांकी ''कस्याहम्''। (To whom do I belong) लिखा है। सीता देवी ने गृहस्थी के जंजालों पर ''अरण्यरोदन'' लिखा है। के. तिरुवेकटाचार्य ने ए.जी. गार्डिनर के On saying Please के अनुरूप ''अमर्षमहिमा'' एकांकी लिखा। सुरेन्द्रमोहन पंचतीर्थ ने ''वणिक सुता'' नाम का एक नये प्रकार का एकांकी लिखा जिसमें एक हिन्दू और एक बौद्ध एक सम्पन्न युवती विधवा से विवाह याचना करते हैं। ''महास्मशान'' नामक एकांकी में देश विभाजन के बाद हुये कोलकता के नरसंहार का तीन दृश्यों में लोमहर्षक वर्णन है। ''लीला विलास'', ''चामुण्डा'', ''निपुणिका'', श्रृंगारनादीय'' आदि अनेक प्रहसन सामाजिक विषयों पर लिखे गये। जीवन्यायतीर्थ ने ''चण्डताण्डव'' प्रहसन में स्टालिन, हिटलर और मसोलिनी का चित्रण किया है।

''अलब्धकर्मीयम्'' के. आर. नायर की बहुत सुन्दर रचना हैं जिसमें एक निर्धन जीविका विहीन संस्कृत विद्वान की दुर्दशा चित्रित की गयी है। इसमें पात्र हैं–कवि, उसकी चिन्ताग्रस्त पत्नी ''भावना'', (imagiuation) उसकी माँ ''गीर्वाणी'' (संस्कृत भाषा), दो बच्चे, पुत्र छन्द और पुत्री रुचि (taste)। यह अच्छी प्रतीकात्मक कृति है।

सन्देश शर्मा के ''श्रृंगारशेखरभाण'' नामक भाण में वर्तमान युग के नये विषय–लेडीज के फैशन, उनके क्लब, उनकी पोशाक, ताश के खेल, टेनिस आदि समाविष्ट किये गये हैं।

आकाशवाणी के विविध स्टेशनों से अनेक संस्कृत एकांकी प्रसारित हो चुके हैं।

क्षेत्रीय साहित्य का संस्कृत रूपान्तरण :

अनेक संस्कृत विद्वानों ने अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों का संस्कृत में अनुवाद किया है। तमिल के सुविख्यात ''तिरुक्कुरल'' के दो अच्छे अनुवाद संस्कृत में हुये हैं।

''सुनीति कुसुममाला'' अप्पाबाजपेयिन द्वारा

''सूक्तिरत्नाकर'' शंकरसुब्रहम्ण्यमशास्त्री द्वारा।

त्रिवेन्द्रम के.एस. नीलकण्ठशास्त्री ने श्रीराम चरितम् के नाम से तमिल के कम्बनरामायण का संस्कृत पद्यानुवाद किया। तमिल महाकाव्य ''शीलप्पोडिकरम्'' का संस्कृत रूपान्तर केरल के सी. नारायनन नायर ने ''कण्व की कोवलम्'' नाम से छः सर्गों में किया है। वैंकटराम शास्त्री के ''कथाशतक'' की सारी कथायें मूल तमिल कहानियों से ली गयीं हैं।

एस.टी.जी. वरदाचारयर ने तेलगू के प्रसिद्ध शतकों का संस्कृत में अनुवाद किया–वेमनशतक, सुमतिशतक, दशरथशतक, कृष्ण शतक भास्करशतक आदि। मलयालम के तीन विख्यात आधुनिक कवियों– उल्लरमेश्वर ऐय्यर, वल्लढ़ोल नारायनमेनन और कुमारनवशतन के संस्कृत अनुवाद गोपालपिल्ले और रमन नम्बूदितिरी ने किये हैं।

मराठी और बँगला साहित्य से भी संस्कृत में बहुत से अनुवाद हुये हैं। केलकर के प्रसिद्ध मराठी उपन्यास ''बलिदान'' का संस्कृत अनुवाद लप्करशास्त्री ने बहुत पहले प्रकाशित किया था।

बंगला के मेघनादवध'' का संस्कृत रूपान्तर नित्यगोपाल विद्याविनोद ने किया। बंकिम और शरच्चन्द्र की अनेक कृतियाँ संस्कृत में अनूदित की जा चुकी है।

फटिकलाल दास ने टैगोर की अनेक कविताओं और छोटीगद्य रचनाओं का संस्कृत में अनुवाद किया है। जैसे–उर्वशी, स्पर्शमणि, अभिसारिका, निष्फल उपहार, स्वर्ण युग, तुच्छमतिः।

जयपुर के मथुरानाथ शास्त्री ने जयपुर वैभव, साहित्य वैभव, और गीतिवीथी में ब्रजभाषा, हिन्दी और उर्दू के अनेक छन्दों (meters) का संस्कृत में उपयोग किया। शास्त्री जी ने विहारी की सतसई का संस्कृत में अनुवाद किया। वाराणसी के श्री जनार्दन गङ्गाधर रटाटे

ने तुलसीकृत रामचरितमानस का संस्कृत पद्य में बहुत अच्छा अक्षरशः अनुवाद किया है। मैसूर के तिरूवेंकटाचार्य ने भी रामचरितमानस का संस्कृत अनुवाद बहुत पहले ही किया था।

उमरखय्याम की रूवैयात ने अनेक संस्कृत कवियों को आकृष्ट किया है। हरिचरणशास्त्री ने रुवैयात का पहले अनुवाद किया। फिर गिरधरशर्मा जी ने और एन.आर.राजगोपाल आयंगर ने रुवैयात का रूपान्तरण किया। पी.बी. कृशणनायर ने "मदिरोत्सव" नाम से इसका अनुवाद 1945 में किया। सदाशिव डॉगे ने 1956 में "भावचसक" अनुवाद प्रकाशित किया।

राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जो नवजागरण भारत में हुआ, उससे संस्कृत कवि और लेखक भी प्रभावित हुये और भारत के अतीत गौरव पर अनेकानेक रचनाये हुयीं। वर्तमान युग के राजनैतिक नेताओं पर भी अनेक रचनायें हुयीं। बालगंगाधरतिलक, एण्ड्रूज, पं. मदनमोहन मालवीय, जवाहरलाल, पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, सुभाष बोस, आदि पर कवितायें और जीवनियाँ संस्कृत में लिखीं गयीं हैं। महात्मागाँधी पर तो प्रचुर संस्कृत साहित्य लिखा गया है। क्षमाराव ने "सत्याग्रहगीता" और उत्तर सत्याग्रहगीता" महाकाव्यशैली में लिखी जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। स्वामी भागवत आचार्य ने "भारतपारिजात" "पारिजापहर" और पारिजात सौरभ" तीनखण्डों में महाकाव्य लिखा है। दरभंगा के साधुशरण मिश्र ने महात्मा गाँधी दर्शन पर "गाँधीसूत्र" लिखा।

संस्कृत भाषा के विषय में एक बड़ी भ्रान्ति यह है कि संस्कृत एक दुरूह, दुःसाध्य और शुष्क भाषा है जिसका सीखना सामान्य जन की सामर्थ्य के बाहर है। मैं पर्वतशिखर से घोषित करना चाहता हूँ कि यह धारणा सर्वथा निराधार और अयथार्थ है। विडम्बना यह है कि संस्कृत के कुछ साहित्य सेवी और वैयाकरण इस दुष्प्रचार के प्रसारण में सहभागी हैं हमारे पण्डितों ने संस्कृत देवी को शैलशिखर

पर बहुत ऊँचे आसन पर अधिष्ठित करके उस शैलपीठ के चतुर्दिक कंटीले तारों की प्राचीर खड़ी कर दी है। फलतः सामान्यजन भूमितल से दूर से उस देवी की वन्दना और स्तुति तो करते रहते हैं किन्तु उसके समीप नहीं पहुंच सकते। उसके स्पर्शसुख का, मातृअंक के सुख का आस्वादन नहीं कर पाते। इससे बढ़कर विडंबना क्या हो सकती है कि कोई बालक अपनी मां के अंक तक पहुंचने में कठिनाई का अनुभव करे।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कंटीले तारों की इस बेड़ी को काटकर भगवती संस्कृत को शैलशिखर से नीचे मैदानों में उतारा जाय और उसे नगर नगर ग्राम ग्राम, सड़कों पर गलियों में और सर्वहारा की कुटियों में घुमाया जाय, भले ही इस पद यात्रा में शुभ्रवसना संस्कृत देवी की धवलशाटी किंचित मैली या धूलि धूसर हो जाय।

पुनश्च संस्कृत के कोमल, ललित, कमनीय और रंजक रूप को उजागर करने की आवश्यकता है। संस्कृत के रंजक, ललित और मनोहारी रूप को जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत करना समय की प्रबल मांग है।

इस देश का दुर्भाग्य है कि सारे उत्तर भारत के, पूर्व के तथा दक्षिण में आन्ध्र, कर्नाटक और सुदूर केरल के बहुसंख्य देशवासी अपने दैनिक व्यवहार की क्षेत्रीय भाषा में 70—80 प्रतिशत संस्कृत प्रभूत शब्दों का प्रयोग करते हुये भी अपनी भाषा की मूल गंगोत्री को भूल गये हैं और अनेक भ्रान्तियों के अंधकार में जी रहे हैं। बहुत सारे लोग, अच्छे पढ़े लिखे लोग संस्कृत को केवल धर्म और अध्यात्म की भाषा समझते हैं। एक बड़ा शिक्षित वर्ग इसे विज्ञान विरोधी अथवा विज्ञानविमुख मानता है। आधुनिक जन संस्कृत को रूढ़िवाद और पुरातन की पोषक कहकर तिरस्कार से मुंह बिचकाते हैं। कुछ अन्य जन इससे भी निम्नस्तर पर हैं। वे संस्कृत को सत्यनारायण की

कथा और विवाह, मुण्डन आदि संस्कारों में मत्रोच्चारण करने वाले बेचारे विप्रों की भाषा कहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये सारे विचार सर्वथा निर्मूल और भ्रामक हैं। ये धारणायें यथार्थ से इतनी दूर और इतनी ही हास्यास्पद हैं जैसे कोई कहे कि अंग्रेजी भाषा में केवल ईसाई धर्म की बातें लिखी हुई हैं और कुछ नहीं है। संस्कृत भाषा में क्या—क्या है, इसका संक्षिप्त विवरण पूर्वपृष्ठों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। समास रूप में यह कहना पर्याप्त होगा कि संस्कृत साहित्य में वह सब कुछ है जो विश्व के किसी भी समृद्धतम साहित्य में है।

संस्कृत विद्वान आज भी अपनी भाषा को जीवंत रखने हेतु शौर्यपूर्ण प्रयास कर रहे हैं। वे जानते हैं कि वे केवल अतीत के गुणगान और मैक्समूलर और शोपेनहावर की प्रशंसा पर जीवित नहीं रह सकते।

उड़ीसा के गजेन्द्र पाँडे ने केवल 60 दिवसों में संस्कृत बोलने की योग्यता प्राप्त करने की एक विद्या विकसित की है। पाँडे जी ने अपने जीवनकाल में कम से कम एक लाख जनों को संस्कृत बोलना सिखाने का प्रण किया है।

संस्कृत न तो सोई हुयी भाषा है, न मृत भाषा है, न वह केवल प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं में बँधी है और केवल पुरातन की पुनरावृत्ति कर रही भाषा है। वह पूर्णतः जीवन्त और वर्तमान समस्याओं तथा घटनाचक्र के प्रति सजग भाषा हैं। जनगणना में सहस्रों भारतीयों, ने संस्कृत को अपनी मातृ भाषा बताया है। जो लोग संस्कृत को सुप्त या मृत भाषा कहते हैं, वे स्पष्टतः सुविज्ञ (well informed) नहीं हैं।

संस्कृतम् पठ यो न ममार न जीर्यते।

**

भारतीय संस्कृति और उसके शाश्वत मूल्य

भारत महाद्वीप के लम्बे इतिहासकाल में भारतीय संस्कृति कैसे इतनी स्वल्पक्षत अवस्था में सुरक्षित रही, यह प्रश्न इतिहासकारों को चकित करता रहा है। यदि आप वैदिक काल के एक सामान्य (typical) गांव का वृत्त पढें और आजकल के एक दूरस्थ सामान्य गांव से उसकी समता करें, तो आप देखेंगे कि कितने अंश में दोनों मिलते जुलते हैं। आज से हजारों वर्ष पूर्व हमारी जो वेषभूषा थी, स्वल्प परिवर्तनों के साथ 80 प्रतिशत भारतीयों की वह आज भी वेशभूषा है। जो रीतिरिवाज, आचार विचार, व्यवहार सैकड़ों वर्ष पूर्व हमारे थे, वे आज भी यथावत् बने हुये हैं। असंख्य पर्व और त्यौहार उसी प्रकार इस देश में मनाये जाते हैं, जैसे कि वे आज से सहस्र वर्ष पहले मनाये जाते थे। जिन देवताओं, दशावतारों की पूजा ईसा से पहले इस देश में होती थी, अल्प परिवर्तनों के साथ वे आज भी पूजे जाते हैं। यह सब कैसे इतनी स्वल्पक्षत अवस्था में सुरक्षित रहा। इस देश पर अनेक आक्रमण हुये, अनेक जातियाँ आईं, सभ्य और बर्बर-ग्रीक, वैकिट्रयन, पार्थियन, शक, कुषाण, पल्लव, हूण, अरब, टर्क, मंगोल, फ्रेन्च, पार्चुगीज़, डच, अंग्रेज़ अपनी-अपनी संस्कृति के साथ। उन्होंने राज्य क्रान्तियाँ की, बड़े-बड़े प्रदेश जीते, भारतीय इतिहास की गति बदल दी। उनकी अपनी अपनी सुसम्पन्न संस्कृतियाँ थीं, अपनी वेशभूषा, अपनी भाषा, अपने आचार व्यवहार, अपने रीतिरिवाज, अपने पर्व त्यौहार, अपने देवता, अपने धर्म। पर वे सब भारतीय संस्कृति में समा गयी। सुविस्तृत देश विभाग को प्लावित करती हुयी, जल प्रलय मचाती हुयी अनेक नदियाँ जैसे समुद्र में शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार अनेक क्रान्तियों, राज्य परिवर्तनों, युद्धों और विजयों के बाद ये जातियाँ भारतीय संस्कृति सागर में समा

गयीं। अनेक बर्बर जातियों की तलवारें इस देश की संस्कृति और सभ्यता को काट न सकीं। क्या कारण था ? संभवतः यह कि भारतीय संस्कृति दिल्ली के किले में बन्द न थी, या किसी भारतीय शासक के ताज में कीलित न थी। यदि ऐसा होता तो यह कब की नष्ट हो गयी होती। वह उन दूर दूर तक बिखरे हुये भारत के सात लाख गांवो में अपनी जड़ जमायें बैठी थी और किसी एक भारतीय शासक को मारकर या राजधानी पर अधिकार करके उस संस्कृति–वृक्ष को हिलाया नहीं जा सकता था। सैकड़ों वर्षों का यूनानी शासन भारत को ग्रीक न बना सका। 800 वर्षो का मुसलमानी शासन भारत को मुसलमान न बना सका, क्योंकि भारतीय या हिन्दू संस्कृति वृक्ष की जड़ें भारत के एक एक गाँव में फैली हुयी थीं। देश का एक एक व्यक्ति उस संस्कृति का संरक्षक (कस्टोडियन) था। इसीलिये दिल्ली में राजमुकुट इस सिर से उस सिर पर दौड़ता रहा, तख्त बदलते रहे, पर भारत के गांवों में ग्रामीण जनता अपने रीति रिवाजों को उसी प्रकार सीने से लगाये यथावत् जीवन बिताती रही।

वह संस्कृति क्या है ? उसे किस प्रकार परिभाषित किया जाय? किन सीमाओं में बाँधा जाय ? क्या वेशभूषा को संस्कृति कहते हैं ? क्या किसी जाति या राष्ट्र की भौतिक सम्पन्नता को उसकी संस्कृति कहेंगे ? क्या राज्य विस्तार और प्रभुत्व–क्षेत्र का विस्तार संस्कृति के अंग हैं ?

यह निर्विवाद है कि संस्कृति और सभ्यता पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। यदि संस्कृति सभ्यता होती तो मृगचर्म और वल्कल पहने वाण और तूणीर लिये पैदल वन वन घूमने वाले राम और लक्ष्मण आज के सुपरसोनिक वायुयानों पर यात्रा करने वालों और मिसाइल से प्रहार करने वालों की तुलना में असंस्कृत माने जाते। जटाजूट और कोपीनधारी वे ऋषि और ब्रह्मचारी जिसके आगमन पर चक्रवर्ती राजादशरथ सिंहासन से उठ खड़े होते थे, कोई सम्मान न पाते।

आज हम जो विशाल कारखाने खड़े कर रहे हैं, दैत्याकार बाँध निर्मित कर रहे हैं, ध्वनि की गति से भी द्रुततर वायुयान बना रहे हैं, सैकड़ों मील दूर स्थित टारगेट को विध्वंस करने वाले प्रक्षेपास्त्र (मिसाइल) का अविष्कार कर रहे हैं, ये सब सभ्यता के अंग हैं। ये भौतिक उपलब्धियों और सुख सुविधायें सभ्यता के सोपान हैं। पर वे इस राष्ट्र की संस्कृति नहीं हैं।

संस्कृति और सांस्कृतिक कार्यक्रम, इन शब्दों पर विगत उत्तरार्ध शती में बहुत बलात्कार हुआ है। किसी भी शामियाने के नीचे या नुक्कड़ पर होने वाला कौतुक, खेल, आलाप, जाज़ या 'राक एंड रोल' सांस्कृतिक कार्यक्रम के महानाम से अलंकृत किये जाते हैं। नगरों और उपनगरों में प्रतिदिन "सांस्कृतिक कार्यक्रम" आयोजित हो रहे हैं। उनमें न तो संस्कृति है, न संस्कार ही।

भारतीय संस्कृति की जो अजस्र धारा पिछले पाँच छः हज़ार वर्षों से प्रवाहित हो रही है, उसका फैलाव, उसका वितान बहुत बड़ा है। वह अपने उदर में वह सब कुछ समेटे हुये है जो इस सुदीर्घ कालावधि में भारतीय कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, आचार व्यवहार, विधि, निषेध, मर्यादा, मान्यता, पाप और पुण्य के रूप में उभरा है और प्रस्फुटित हुआ है। किसी जनसमुदाय, जाति या राष्ट्र की संस्कृति उसके सदस्यों की सम्पूर्ण जीवनयापन विधि, उनके आचार व्यवहार, उनके चिंतन, उनकी सौन्दर्य–दृष्टि, उनकी मर्यादाओं, मान्यताओं, परम्पराओं, नैतिक मूल्यों और प्रेरणा–श्रोतों का समग्र और समवेत रूप है। महामना के.एम. मुंशीजी के शब्दों में वह किसी जाति की किन्हीं आधार–भूत मूल्यों से पोषित अपनी निजी जीवनयापन विधि है। संस्कृति, कला, धर्म, साहित्य, सामाजिक संस्थाओं तथा व्यक्तियों के कार्यकलापों द्वारा अभिव्यक्त हुआ मूल्यों का महायोग है।

भौगोलिक निकटता या भौगोलिक सहवास से समान संस्कृति का अभ्युदय या संस्कृति का एकीकरण अवश्यम्भावी नहीं हैं। अफ्रीका

की अनेक जातियों भौगोलिक रुप से पड़ोसी होने पर भी अलग अलग संस्कृतियों की जन्मदात्री हैं। भारतवर्ष में ही हिन्दू और मुसलमानों के भौगोलिक रूप में सहवासी होने पर भी उनकी संस्कृति एक नहीं है। एक समुदाय महाराणाप्रताप और शिवाजी से प्रेरणा ग्रहण करता है और दूसरा मोहम्मद ग़ोरी और बाबर से।

यदि आप संस्कृति के रुप का विवेचन करें, तो स्पष्ट होगा कि उसका पहला लक्षण उसकी सततता (Continuity) है। वह पुरातन से आकर वर्तमान में समायोजित होती है और भविष्य का निर्माण करने हेतु बढ़ती है। जब किसी जन समुदाय या जाति के सामुदायिक जीवन में सततता की धारा प्रवाहित होती है, तभी संस्कृति की सरिता का अपना स्वरूप उभरकर सामने आता है, अर्थात् किसी राष्ट्र या जाति के लोग अपनी एक सतत जीवनविधि विकसित करते है और कुछ कालावधि तक उसे निरन्तर चलाते हैं, तो एक विशिष्ट संस्कृति का जन्म होता है। जीवनविधि की यह सततता या निरन्तरता, यह अजस्र प्रवाहमयी सामुदायिक जीवनधारा जिसे हम संस्कृति कहते हैं, विभिन्न रुपों में अपने को व्यक्त करती है, जैसे समान परम्पराओं में, समान संस्थाओं के रूप में, समान नैतिक मूल्यों में, समान आचार व्यवहार में, समान सौन्दर्य–दृष्टि में एवं उपलब्धियों और सफलताओं और पूर्वजों पर समान रुप से गर्व के अनुभव द्वारा।

यदि किसी जाति व समुदाय के लोगों की समान परम्परायें, समान मान्यतायें और समान नैतिक मूल्य होंगे, तभी उनकी एक अपनी संस्कृति होगी। आप भारतवर्ष में कहीं भी जायें, यह पायेंगे कि समाज का बहुत बड़ा भाग कुछ नैतिक मूल्यों को निर्विवाद रुप से स्वीकार करता है और उन्हें अपनाये हुये हैं। यत्र तत्र कुछ लोग उन मूल्यों से विपथ या स्खलित हो सकते हैं, किन्तु वे विपथगामी लोग भी उस व्यवहार को स्खलन ही मानते हैं। उदाहरणार्थ यदि आप कहें कि अमुक व्यक्ति अपने भाई के प्रति लक्ष्मण की भाँति अनुरक्त है, या अमुक स्त्री सीता की भाँति स्वामिव्रता है तो सामान्य भारतीय

नागरिक उसका अर्थ तत्काल समझ लेगा और उन आदर्शों पर प्रश्न नहीं करेगा।

जैसा कि मैंने पहले निवेदन किया, भारतीय संस्कृति का वितान बहुत बड़ा और बहुत लम्बा चौड़ा है। आध्यात्मिक, अपरिग्रही जीवनपद्धति, अहिंसा, सत्य, इन्द्रियनिग्रह–निष्ठ जीवन का आदर्श, संयुक्त कुटुम्ब की अवधारणा, सोलह संस्कार, विवाह की संस्था, गुण और कर्म के विभाग से चातुर्वर्णों की स्थापना मानव जीवन के उद्देश्यों, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का निर्धारण, उनकी प्राप्ति हेतु चार आश्रमों की व्यवस्था, ईश्वरप्रत्यक्ष, धर्मशास्त्र और वेदान्त से लेकर दैनिक जीवन के व्रत, उपवास और द्वार पर आये हुये भिक्षुक को खाली हाथ न लौटाने तक, ये सब भारतीय संस्कृति के अंग हैं। किन्तु मैं समास रुप में, संक्षेप में उन मानव मूल्यों और नैतिक मान्यताओं को रेखांकित करना चाहता हूँ जो सदा से भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। इन मूल्यों और इन मान्यताओं ने हमारी संस्कृति को एक विशिष्ट स्वरूप, एक अपना निजी स्वरूप दिया है–

विश्वबन्धुत्व की कल्पना

भारतीय चिन्तकों का पहला उद्घोष था :

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

सहस्रों वर्ष पूर्व किया गया यह उद्घोष आज भी कितना प्रासंगिक है, कितना प्रेरणादायक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। पारस्परिक सौहार्द और विश्वबन्धुत्व की भावना भारतीय संस्कृति की आत्मा है। भारतीय मनीषियों ने जो मार्ग बतलाये, जो जीवनदर्शन प्रस्तुत किया, वह मानव मात्र के लिये था। सर्वमंगल के सिद्धान्त–मानवमात्र की मंगलकामना से प्रेरित आर्य ऋषियों ने पुकारा था–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्।।
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानावाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदः शतम्।।

सभी लोग सुखी हो। सभी नीरोग हों। सभी का कल्याण हों। कोई भी दुःखी न हो।

सभी जन बाधाओं को पार करें और सुख को प्राप्त करें। अपने–अपने अभीष्ट को पायें और सर्वथा आनंद में रहें। पुत्रहीन जनों को पुत्र प्राप्त हों। पुत्र वालों को पौत्र मिलें। निर्धन जन धनी हो जायें और सभी सौ वर्षों की लम्बी आयु पायें।

भोगवाद का निषेध त्याग और भोग साथ साथ

अपरिग्रह सदा से भारतीय जीवन का आदर्श रहा है। अपरिग्रह को धर्म का अंग माना गया। भोगवाद को सदा हेय माना गया। इसी सिद्धान्त की खण्डिका (Corollary) के रुप में भारतीय मनीनिषों ने प्रतिपादित किया कि जो भी धनार्जन किया जाय, वह केवल अपने लिये न किया जाये। त्याग और भोग साथ साथ चलें तथा किसी अन्य के धन पर कभी दृष्टि न डालें।

तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधःकस्यस्विदधनम्।

यही आदर्श था। यही मर्यादा थी। धन संचय पर यह अंकुश लगा था। दूसरे के धन का आहरण करके धनवान बनने का प्रयास मत करो। यह केवल कोरा आदर्श नहीं था। अनेकानेक भारतीयों ने इसे अपने जीवन में उतारा। अभी सातवीं सदीं में महाराज हर्षवर्धन ने कई बार प्रयाग में संगम पर अपना राजकोष खाली कर दिया और

स्वयं मात्र एक वस्त्र पहन कर वहाँ से निकले। राजा और गृहस्थ होते हुये भी महाराज जनक त्याग की मूर्ति थे और विदेह कहलाते थे। भारतीय संस्कृति का यह सिद्धान्त आज कितना प्रासंगिक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। धन संग्रह की इस समय जो तीव्र होड़ चल रही है, उसमें लोग पागलों की भांति दौड़ते दिख रहे हैं। दूसरों के पैरों पर पैर रखते हुये आगे, पीछे, दाये, बायें, लोगों को ढकेलते और कुचलते हुये लोग आगे बढ़ने की होड़ में लगे हैं। संग्रह बुद्धि ने सारे जन समुदाय को अपने बाहुपाश में जकड़ रखा है। परिग्रह बुद्धि बढ़ते बढ़ते लूट की लालसा बन गयी है और गज़नवी की तृष्णा सी चिर अतृप्त है। अतः आज पुनः भारतीय संस्कृति के उसी मूल्य के पुर्नस्थापन की आवश्यकता है। वही उद्घोष– जिसे आर्य ऋषियों ने बार बार दोहराया है।

तेन त्यक्तेन भुंजी थाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

समाज में अन्य जनों के प्रति अनिष्ट का निषेध–

मानव मात्र के प्रति सद्व्यवहार और प्रिय आचरण भारतीय संस्कृति का आधारभूत मन्त्र था।

सर्वप्राणमृताम् शमं आशास्तिव्यम्,
अहरहः उतिष्ठता उपविशता च।

प्रतिदिन उठते और बैठते समस्त प्राणियों की मंगलकामना करनी चाहिये।

पुनः

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।

जो आचरण अपने लिये प्रतिकूल हो, अर्थात् अहितकर हो, वह दूसरों के साथ नहीं करना चाहिये। विदुर नति में यही बात और अधिक बल देकर कही गयी है।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वापि चावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

जीवदया

प्राणिमात्र के प्रति दया भारतीय संस्कृति का सर्व स्वीकृत मूल्य है।

महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया–

तथा च सर्वभूतयो वर्तितव्यम् यथात्मनि।

सभी जीवों के साथ वैसा ही वर्ताव किया जाना चाहिये जैसा व्यक्ति अपने लिये अपने हित में करता है।

पशु पक्षियों, कीड़ों, मकोड़ों के प्रति भी दया का भाव हमारी संस्कृति का अंग है। कोटि कोटि भारतीय इसे स्वीकार करके अपने जीवन में उतारने का प्रयास करते रहे हैं।

पशूनां च मृगानाम् च पक्षिणां च तथा द्विजाः।
तृण द्रुमलतानां च प्राणात् भवति नाकभाक्।।
कीटे पतंगे पशौ दया कार्या तथा मृगे।
वर्णोत्तमे वर्णहीने पतिते वर्णशंकरे।
सर्वत्रैव दया कार्या सर्वकामफलप्रदा।

आज पशुओं पर नृशंसता रोकने के लिये कानून बनाये जा रहे है। (Prevention of cruelty to animals Act) शासन का पशुपालन विभाग इसके लिये शासनतन्त्र का प्रयोग कर रहा है। पर यह मानव मूल्य बहुत पहले से हमारी संस्कृति का अंग हैं।

किसी भी दुखी और संतप्त प्राणी की सहायता और उसके प्रति सहानुभूति की भावना भारतीय संस्कृति के आधारमूल्यों में से है।

महाभारत में राजा शिवि की यह प्रार्थना देखिए–

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुर्नभवम्।

कामये दुखतप्तानाम् प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

इसी प्रकार राजा रन्तिदेव जिन्हें भारतीय समाज ने त्याग और बलिदान के उपमान के रुप में स्वीकार किया, कहते हैं–

नकामयेऽहं गतिमीश्वरात् पराम् अष्टधिर्युक्ताम् अपुनर्भववा।

आर्तिम् प्रपक्षेऽखिलदेहभाजाम् अन्तः स्थितो येनभवन्त्वदुःखाः।।

मैं ईश्वर से आठों सिद्धियों की या उत्कृष्ट गति की, या अपने लिये जीवन मरण से मुक्ति की प्रार्थना नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि समस्त प्राणियों के अन्दर स्थित होकर उनकी पीड़ा को स्वयं भाग लूँ जिससे वे दुखरहित हो जायें।

गुरु शिष्य आचरण

गुरुजनों और विशेषतः आचार्य के प्रति व्यवहार के जो मानदण्ड हमारी संस्कृति ने निर्धारित किये थे, वे इस प्रकार थे। "आचार्य देवोभव"। अर्थात् आचार्य को देवस्वरुप मानना चाहिये। "गुरुणां परुषम् वाक्यम् आशीषम् चिन्तयेत्।" गुरु के कठोर वचन को आशीष समझना चाहिये।

तेन संताड़ितोवाधि प्रसादम् इति संस्मरेत्।

गुरु द्वारा दी गयी ताड़ना को उनका प्रसाद ही समझना चाहिये।

अभिमानोहि नकर्तव्यो जातिविद्याधनादिभिः।

गुरु के सामने अपनी जाति, अपनी विद्या तथा अपने धन का अभिमान नहीं करना चाहिये।

गुरोस्तु यक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्।

गुरु की आंखों के आगे मनमाने ढंग से नहीं बैठना चाहिये, अर्थात् शिष्टता से बैठना चाहिये।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्।

परोक्ष में भी गुरु का नाम उपाधिश्री आदि के लगाये बिना नहीं कहना चाहिये।

इस प्रकार गुरु के लिये भी शिष्य के प्रति आचार संहिता निर्धारित है–

पुत्रमित्रैनमनुकांक्षन् सुयुक्तो विद्यां ग्राहयेत्।

अपने पुत्र की भाँति शिष्य की उन्नति की कामना करते हुये कुछ भी न छिपाते हुये पूर्ण निष्ठा से शिष्य को विद्या प्रदान करनी चाहिये।

पुनः, आचार्यो मधुरैर्वाक्येसाभिप्रायलोचनैः।

शिष्यं शिष्यात् न निर्लज्जं कुर्यात् बन्धन ताडनैः।

आतिथ्य

अतिथियों को प्रति व्यवहार के मानदण्ड भी हमारी संस्कृति ने निर्धारित किये हैं। आज की अतिथि-संस्कृति उर्दू के एक व्यंग्यकार ने इस प्रकार परिभाषित की है।

"घर से मेहमान ज़रा दूर चला जाय फिर

गालियाँ देंगे जी भर के, अभी हाथ हिलाते रहिये।

हमारा मूलमन्त्र था :

"अतिथिदेवोभव।

अतिथि प्रत्येक भारतीय के लिये देवता तुल्य था। उसे देवतुल्य सम्मान देने का भारतीय संस्कृति का आदेश था।

गृहमागतं क्षुद्रमपि यथार्ह् पूजयेत्।

अपने घर आये छोटे व्यक्ति का भी यथा योग्य सत्कार करना चाहिये।

"शेष भोगी अतिथीनां स्यात्"

अतिथि को पहले खिलाकर फिर स्वयं भोजन करना चाहिये।

महाभारत के वनपर्व का यह श्लोक भी ध्यातव्य है–

चक्षुर्दद्यात् मनो दद्यात् वाचं दद्यात् चसूनृताम्।

उत्थाय आसनं दद्यात् एष धर्मः सनातनः।।

अतिथि के आगमन पर अन्यमनस्क होकर बैठे रहना सही आचरण नहीं है। आने पर उसे दृष्टि से उदारतापूर्वक देखिये, उसको अपना मन अर्थात् ध्यान दीजिये। वेद व्यास कहते हैं, यही सनातन धर्म है। भारतीय संस्कृति की यही मान्यता है–अतिथ्य मर्यादा पर एक और श्लोक देखिए–

अरौऽपिउचितं कार्य आतिथ्यं गृहमागते।

छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः।।

यदि शत्रु भी अतिथि के रुप में घर आये तो उसका भी आतिथ्य किया जाना चाहिये। वृक्ष को काटने के लिये जब लकड़हारा वृक्ष के नीचे पहुँचता है, तो वृक्ष उसे भी छाया प्रदान करता है।

कृतज्ञता–

उपकर्ता के प्रति कृतज्ञता एक दैवी गुण है। जो किये हुये उपकार को भूल जाता है वह मानवता से गिरा हुआ है। इस मानव मूल्य को भारतीय संस्कृति ने बार बार प्रतिष्ठित किया है। महाभारत के द्रोण पर्व में कहा गया है–

ब्रम्हहत्याफलं तस्य यः कृतं नावबुध्यते।

कृतघ्न को ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है।

पुनः शान्ति पर्व में कहा गया है कि संसार में सब पापों का कोई न कोई प्रायश्चित है, पर कृतघ्नता के लिये कोई प्रायश्चित नहीं है। कोई पाश्चाताप उसे धो नहीं सकता है। यह भारतीय संस्कृति द्वारा निर्धारित मूल्य है। इस मूल्य का ह्रास हो जाने पर संसार रहने योग्य न रह जायेगा।

गोन्घ्ने सुरापे चैव चोरे भग्नव्रते तथा।

निष्कृतिः विहिता सद्भिः कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः।।

नारी सम्मान

नारी जाति के प्रति समादर का भाव भी भारतीय संस्कृति का आधार मूल्य है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

नारी अनादर की वस्तु नहीं है। हमारी संस्कृति की यह मान्यता है कि स्त्री की उपस्थिति के बिना देवापूजा या यज्ञ अनुष्ठान पूरा ही नहीं होता। वह अर्धाङ्गिनी है।

हमारे धर्मशास्त्रों में यह निर्धारण किया गया–

"धनेन वाससा प्रेम्णा श्रद्धामृतभाषणैः।

सततं तोषयेद् दारान् नाप्रियं क्वचिदाचरेत्।।

धन और वस्त्र देकर तथा श्रद्धा एवं अमृततुल्य वचनों से स्त्री को सदा प्रसन्न एवं संतुष्ट रखना चाहिये।

मनुस्मृति कहती है कि गृहसंचालन का, धन के हिसाब किताब का, धार्मिक कार्यों का, सफाई व्यवस्था का सारा कार्य पत्नी को सौंपना चाहिये–

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्ययेचैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मे, सुमन्त्र पक्त्यां चा पारिणाहादयस्य वेक्षणे।।

पर भारतीय संस्कृति के ये मानव मूल्य आज तमाच्छदित से हो रहे हैं। भौतिकवाद की तेज आँधी में नैतिक मूल्यों के ये पुरातन वृक्ष टूटते से दिखायी पड़ रहे हैं। धार्मिक आस्थाओं, विश्वासों, पर्वों, त्यौहारों, व्रतों, उपवासों, विवाह मुण्डन, अन्त्येष्टि आदि संस्कारों को अब भी भारतीय जनता अपने हृदय से लगाये हुये हैं। किन्तु सत्य, अहिंसा, परोपकार, जीवदया, क्षमा, कृतज्ञता आदि मानवीय गुण जो भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग थे, विलुप्त होते जा रहे हैं। आज के युग में इन्हीं की परम आवश्यकता है। इन मानव गुणों, नैतिक मूल्यों का लोप हो जाने पर यह संसार कदाचित रहने योग्य न रह जायेगा। भारतीय संस्कृति के नवजागरण और पुनरस्थापन के प्रयास में इन नैतिक मूल्यों को उजागर करना इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। आज की आध्यात्म–विमुख एवं भौतिक संस्कृति के प्रहारों से आहत और विश्रृंखल समाज को शान्ति, शीतलता और सुख सनातन भारतीय संस्कृति के मातृ अंक में ही मिल सकते हैं।

**

कालिदास का वाग्वैभव

विश्व के साहित्याकाश में संस्कृत साहित्य की अपनी एक अनन्य प्रभा है और उस प्रभा के कारण वह नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा की भांति दीप्तमान है। संस्कृत कवियों में कवि कुलगुरु कालिदास किसी मुक्ता–माला में शिखरमणिं की तरह भास्वर हैं। विपुल और अति समृद्ध संस्कृत साहित्य के दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य में जो कुछ भी उसके परम उत्कर्ष के रूप में और शाश्वत रूप से प्रतिष्ठित है, कालिदास उस सबके प्रतीक और उपमान स्वरूप हैं।

किसी कवि ने तो यह कहा कि संस्कृत में एक ही कवि हुये– कालिदास, कालिदास और फिर कालिदास–

"पुराकवीनाम् गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत् तुल्य कवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव।।

प्राचीन काल में कवियों की गणना होने लगी तो सबसे पहला नाम कालिदास का लिया गया और आज भी उनके आगे कोई नाम नहीं सूझता। गिनने वाली अगली उँगली अनामिका ही रह गयी है।

कुमार संभव में पार्वती के मनोहर रूप का वर्णन करते हुये कालिदास ने लिखा था कि ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मा को जब संसार का संपूर्ण सौन्दर्य एक ही स्थान पर देखने की इच्छा हुयी तो उन्होंने उपमा देने के लिये व्यवहृत होने वाली सभी वस्तुओं को यत्नपूर्वक एकत्र करके और उनको यथा स्थान विनिवेशित करके पार्वती का निर्माण कर दिया।

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।।

ठीक यही बात कालिदास की कविता के बारे में कही जा सकती है। भारतीय धर्म, दर्शन, शिल्प और साधना में जो कुछ

उदान्त है, जो कुछ दृप्त है, जो कुछ महनीय है, और जो कुछ ललित और मोहन है, उसका प्रयत्नपूर्वक संजोया–सँवारा रूप एक ही स्थान पर देखना हो तो कालिदास का साहित्य पढ़िये।

एक कवि ने कविता सुन्दरी का जीवनवृत्त लिखा और शैशवकाल से युवाकाल तक का वर्णन किया तो यह कहा कि वैदर्भी कविता बाल्मीकि के आँगन में जन्मी, महर्षि व्यास के द्वारा पाली पोसी गई और जब वह युवा हुई तो उसने स्वयं कालिदास को पति रूप में वरणं किया।

"बाल्मीकेरजनिप्रकाशितगुणा व्यासेन लीलावती।

वैदर्भी कविता स्वयं वृणवती श्रीकालिदासं वरम्।।

संस्कृत में रसात्मक वाक्य को काव्य परिभाषित किया गया है–"वाक्यं रसात्मकं काव्यं। महापंडित वाणभट्ट रसमय काव्य के अनन्यतम स्रष्टा है। उनकी कादम्बरी काव्यरस का पारावार है। वाणभट्ट कालिदास की वाणी के लिये कहते हैं–

"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।

प्रीतिर्मधुरसान्द्रासुमंजरीष्वि जायते।।"

गीत गोविन्द के गायक ललित काव्य शिरोमणि जयदेव कालिदास को कविताकामिनी का "विलास" कहकर उनके प्रति अपनी सम्मान की कुसुमांन्जलि अर्पित करते हैं। वह कहते हैं–

"यस्यास्चोरः चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः।

भासोहासः कविकुलगुरुः कालिदासोविलासः।।

कविताकामिनी का अन्य सब कुछ तो सुन्दर है ही। कविवर चोर उसके चिकुर हैं, कवि मयूर कर्णपूर हैं, महाकवि भास उसके हास्य हैं। लेकिन कालिदास इस सुन्दरी के विलास रूप हैं जो किसी नवयौवना का सबसे बड़ा आकर्षण है।

किसी जीवन रसिक ने एक बार ओमर ख़य्याम की मुद्रा (स्टाइल) में ईश्वर से अभिलषित वर माँगे और कहा :

कालिदास कविता, नवं वयः, माहिषं दधि, सशर्करं पयः।
एणमांसम् अबला सुकोमला, संभवतु मम जन्मनि जन्मति।।

(हरिण)

उमर खयाम ने माँगा था–

"O with a loaf of bread, beneath the bough
A flask of wine, a book of verse
And thou beside me, in the wilderness
And wilderness is heaven a-now."

इसी प्रकार जीवंतता से सरोबार यह रसिक कहता है :

मुझे प्रत्येक जन्म में मिले : क्या ?

कालिदास की कविता, चढ़ता हुआ यौवन, भैंस का दहीं, शर्करायुक्त दूध, हरिण का माँस और कोमल नवेली। बस यही मेरी अभिलाषा है।

महाकवि कालिदास का साहित्य इतना समृद्ध और गहरा है कि रस के अन्वेषकों को वह सागर सा रसमय और विशाल दीखता है। उसकी गहराइयों में अवगाहन या उसका समग्र रूप से विवेचन करना विचक्षण विद्वानों के लिये भी दुष्कर है। आंशिक रूप में ही हम उसका रसास्वादन या उस पर परिचर्चा का प्रयत्न कर सकते हैं।

महाकवि कालिदास की प्रमाण पुष्ट और निर्विवाद सात कृतियाँ मानी जाती हैं।

1. **मालविकाग्निमित्रम्**
2. **विक्रमोवर्शीयम्**

3. **अभिज्ञानशाकुन्तलम् (नाट्कत्रय)**

4. **तथा ऋतुसंहारभू मेघदूतम्, कुमारसंभवम् और रघुवंशम् (काव्य चतुष्टय)**

मेघदूत कालिदास का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य है। वह कुमारसंभव और रघुवंश से भी अधिक चर्चित और लोकप्रिय हुआ और जनसाधारण का कण्ठहार बन गया। मेघदूत की कथावस्तु बहुत छोटी सी है। अपनी प्रिया में अतिशय आसक्त, अलकापुरी का एक यक्ष (उसका नाम कवि ने नहीं दिया है) कर्तव्य पालन में स्खलन के कारण अपने स्वामी यक्षपति कुबेर द्वारा अभिशप्त होता है और एक वर्ष के लिये निर्वासित कर दिया जाता है। वह रामगिरि पर आकर अपना निवास बनाता है।

"कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः,
शापेनस्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छायातरूषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।

प्रवास के आठ महीने तो वह किसी प्रकार काट लेता है। किन्तु आषाढ़ के प्रारम्भ में जब आकाश में बादल घिर आते हैं, तो उसका धैर्य टूटने लगता है। वह मेघ को अपना दूत बनाकर अपनी प्रिया के पास अलकापुरी भेजता है। कहानी बस इतनी ही है। कालिदास की तीव्र अनुभूति, रसात्मकता, जड़ और चेतन संसार के व्यापार के व्यापक ज्ञान और उनके शिल्प ने इसे एक मनोहारी, चिरनवीन, अद्वितीय विरहगीत में ढाल दिया है।

वर्षा के आगमन पर आकाश में जब बादल घुमड़ कर आते हैं तो यह वैविध्यमयी शतशः प्राणियों और वनस्पतियों से संकुल प्रकृति जो–जो परिवेश, जो जो रूप धारण करती है, सारे थलचर, जलचर और नभचर प्राणियों, विशेषतः वियुक्त प्राणी जनों में जो जो प्रतिक्रिया

होती है, जो जो भाव जागृत होते हैं, वे ही मेघदूत की गीतमाला में पिरोये गये हैं।

मेघदूत अद्‌भुत काव्य है। उसकी रसात्मकता और अंतस्पर्शिनी भावानुभूति युगों से सहृदयों को आलोड़ित करती रही है। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि काव्य में दूतकाव्य की एक परम्परा ही चल पड़ी। इसका अनुकरण करके पवनदूत, पिकदूत, काकदूत, सुनाकदूत आदि अनेक दूतकाव्य लिखें गये। जर्मन साहित्य के रोमांटिक कवि शिलर ने अपने काव्य "मेरियर स्टुवर्ट" में मेघ को ही बन्दिनी रानी का दूत बनाया।

भारतीय भाषाओं में मेघदूत के अनेक समश्लोकी और पद्यानुवाद किये गये है। सैकड़ों व्याख्यायें इस पर लिखी गई हैं। जिसने भी मेघदूत को पढ़ा, उसे उसमें कुछ नया–नया सा दिखाई पड़ा। संभवत मेघदूत मानव की चिरनवीन विरहवेदना और मिलनांकाक्षा की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति करने वाला काव्य है। इस कारण उसकी अपील और मर्मस्पर्शिता इतनी व्यापक और प्रखर है।

संस्कृत विद्वत् समाज में एक उक्ति प्रचलित है :

मेघे माघे गतं वयः।

अर्थात् जीवन भर कालिदास के मेघदूत और माघ के शिशुपाल बध को पढ़ते रहे पर तृप्ति न हुई।

कालिदास ने दो महाकाव्य लिखे–कुमारसंभवम् और रघुवंशम्। दोनों अद्वितीय हैं और संस्कृत साहित्य के मंच पर बहुत ऊँचे पीठ पर प्रतिष्ठित हैं। कुमार संभवम् में पर्वतपुत्री पार्वती की देवाधिदेव शिव की प्राप्ति हेतु की गयी घोर तपस्या, शिवपार्वती विवाह और कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा आबद्ध की गयी है। ग्रंथ के प्रारम्भ में उत्तर दिशा स्थित नगाधिरान हिमालय का अद्‌भुत वर्णन है। हिमालयात्मजा पार्वती इसी मनोहारी परिवेश में प्रकृति की गोद में

पलती है। शनैः शनैः चन्द्रलेखा सी बढ़ती हुई वह यौवन को प्राप्त होती है और देवाधिदेव महादेव को पति रूप में प्राप्त करने का संकल्प करती है। कामदेव को शिवजी द्वारा भस्म किये जाते देख वह सौन्दर्य से नहीं, अपने तप से उन्हें जीतने का निश्चय करती हैं। महाकाव्य के पंचम सर्ग में कवि ने पार्वती की इस घोर तपस्या का अतीव सजीव और विस्तृत वर्णन किया है। तपस्यावधि में शिव एक ब्रह्मचारी का वेश धारण कर पार्वती की परीक्षा भी लेते हैं। किन्तु पार्वती शिलावत् अडिंग रहती है। अन्ततः शिव प्रसन्न होते हैं और पार्वती को स्वीकार करते हैं।

अद्य प्रभृति अवनतांगि तवास्मि दासः
क्रीतस्तुपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।

छठे सर्ग में सप्तर्षि शिव की ओर से हिमालय से उनकी पुत्री को माँगते हैं।

सातवें सर्ग में शिव और उमा का प्राजापत्य विधि से विवाह सम्पन्न होता है।

काव्य के अंतिम आठवें सर्ग में कालिदास ने देव दम्पती की विवाहोत्तर विलास लीला का वर्णन किया है। संयोग श्रृंगार यहाँ अपनी चरम सीमा पर पहुँचा है। कुछ आलोचक इस श्रृंगार वर्णन पर उंगली भी उठाते हैं और उसे मर्यादा का उल्लंघन कहते हैं।

कालिदास ने इन्हीं आठ सर्गों की रचना की थी। कालान्तर में किसी अज्ञातनामा कवि ने अतिरिक्त ग्यारह सर्ग जोड़कर कुमार जन्म की कथा को पूरा किया।

कुमार संभव प्रकृति वर्णन में और रस परिपाक में भी अति उत्कृष्ट रचना है। कामदेव के भस्म हो जाने पर उसकी पत्नी रति के विलाप में करुणा रस की चरम परिणति हुयी है। इसी प्रकार पार्वती के रूप वर्णन और आठवें सर्ग में विलास लीला में श्रृंगार रस का प्रगाढ़ परिपाक हुआ है।

कुमार संभव महाकाव्य पर इस पुस्तक के एक पृथक लेख में पाठकों को कुछ अधिक सामग्री मिलेगी।

कालिदास का दूसरा महाकाव्य रघुवंशम् है। उन्नीस सर्गों में आबद्ध यह एक वृहद रचना है और महाकाव्य के समस्त लक्षणों से युक्त है। इसमें राजा दिलीप से लेकर श्रीराम, उनके पुत्र कुश, और उनके अनुवर्तियों तथा अन्तिम राजा अग्नि वर्ण तक सारे सूर्यवंशी राजाओं का इतिहास वर्णित है। काव्य के प्रथम सर्ग में राजा दिलीप और उनकी महारानी सुदक्षिणा की कथा है जो अपने प्राणों का उत्सर्ग करके नन्दिनी धेनु की सेवा और रक्षा करते हैं। और उस सेवा से उन्हें पुत्र की प्राप्ति होती है। फिर तीसरे सर्ग में पुत्र रघु का जन्म, चौथे में रघु की दिविग्जय और पाँचवे में रघु की कुबेर पर विजय का वर्णन है। रघु के उपरान्त उनके पुत्र अज की कथा प्रारम्भ होती है। अज विदर्भ राज की कन्या इन्दुमती के स्वयंवर में जाते हैं। इन्दुमती के स्वयंवर का कालिदास ने अद्भुत चित्रमय वर्णन किया है। विवाह के उपरान्त पति के साथ उद्यान में रमण करती इन्दुमती नारद की वीणा से गिरी हुई माला का स्पर्श कर मर जाती है। अज इस आकस्मिक घटना से अपना धैर्य खो बैठते हैं और करुण विलाप करते हैं। इस विलाप के वर्णन में महाकवि कालिदास की विलक्षण काव्य प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

तदुपरान्त नवें सर्ग में राजा दशरथ की कथा, उनके चार पुत्रों के जन्म और राम की समग्र कथा—उनका विवाह, वनगमन, लंकाविजय, रावणवध, और पुष्पकविमान से अयोध्या वापसी वर्णित है।

चौदहवें सर्ग में राम द्वारा सीता परित्याग की अतिशय करुण कथा भी वर्णित है। सोलहवें सर्ग में कुशावती में राज्य कर रहे कुश से परित्यक्ता अयोध्या की राजलक्ष्मी उसकी दीन दशा का वर्णन करती हैं। राजा कुश उसके अनुरोध पर अयोध्या लौटते हैं और अयोध्या का पुनर्निर्माण करते हैं। रघुवंश महाकाव्य के अंतिम उन्नीसवें

सर्ग में राजा अग्निवर्ण की कथा है। वह अतीव कामुक राजा है। कालिदास ने उसका विस्तृत चित्रण किया है। अंततः वह क्षयग्रस्त हो मृत्यु को प्राप्त होता है और यहीं यह महाकाव्य समाप्त हो जाता है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

अभिज्ञान शाकुन्तलम् कालिदास की सर्वोत्तम कृति है। इसकी गणना विश्व साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में की जाती है। विदेशी साहित्य मनीषियों ने भी शाकुन्तलम् का लोहा माना है। यह नाटक स्त्रियों और पुरुषों, राजाओं और सामान्य तपस्विनी बालाओं, गृहस्थों और संन्यासी ऋषियों की कोमलातिकोमल भावनाओं का क्षीर सागर है। इस कृति में कालिदास की काव्यप्रतिभा अपने चरम उत्कर्ष पर दिखाई पड़ती है। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व सर विलियम जोन्स ने सबसे पहले अंग्रेजी में शाकुन्तलम् का अनुवाद किया और कालिदास का यह नाटक योरप पहुँचा। प्रसिद्ध जर्मन महाकवि गेटे ने जब यह अनुवाद पढ़ा तो वह झूम उठा और इसे भूरि भूरि सराहा। उसके उपरान्त विश्व की अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद हुये और सराहे गये। कुछ साहित्यकारों ने अंग्रेजी के महानतम नाटककार विलियम शेक्सपियर से कालिदास की तुलना करके अपनी श्रद्धाजंलि भेंट की।

अभिज्ञान शाकुन्तलम राजा दुष्यन्त और अप्सरा कन्या शकुन्तला की प्रणय कथा से संबद्ध सात अंकों का नाटक है। दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा कालिदास ने पद्यपुराण से ली और उसे अपनी अलौकिक काव्य प्रतिभा से अमर बना दिया।

नाटक के पहले अंक में आखेट के लिये निकला हुआ राजा दुष्यन्त कण्वऋषि के आश्रम के निकट पहुँच जाता है। महर्षि कण्व आश्रम में नहीं हैं। आश्रम में आये अतिथि के सत्कार का भार उस समय ऋषि की पालिता कन्या शकुन्तला पर है। शकुन्तला को देखते ही राजा उस पर मुग्ध हो जाता है। शकुन्तला भी कामवाण से विद्ध

हो कामज्वर से पीड़ित होती है। सखी तपस्वी कन्यायें उसे ढाढ़स बँधाती हैं और उपचार करती हैं। दुष्यन्त आश्रम आकर शकुन्तला से गंधर्व विवाह करता है। तदुपरान्त शकुन्तला को अपनी एक अंगूठी चिन्ह स्वरूप देकर राज्य के काम से अपनी राजधानी को लौट आता है। उसके विरह में शकुन्तला अतिशय विह्वल और विक्षिप्त सी हो जाती है। यहाँ तक कि उन्हीं दिनों दुर्वासा ऋषि के कण्व आश्रम पधारने कर वह उन्हें नहीं पहचानती। इस अवज्ञा से क्रुद्ध होकर दुर्वासा ऋषि शकुन्तला को शाप दे देते हैं। जिसकी चिन्ता में लीन रहकर यह मुझ तपस्वी ऋषि को नहीं पहचान पायी, वह भी इसे समय आने पर नहीं पहचान पायेगा। दुर्वासा ऋषि का शकुन्तला को दिया हुआ यही शाप नाटक की कहानी को आगे बढ़ाता है। सखियों की अनुनय विनय पर द्रवित दुर्वासा कहते हैं कि दुष्यन्त अपनी दी हुई अंगूठी देखकर इन्हें पहचान लेगा।

नाटक के चौथे अंक में कण्व जी अपने आश्रम में वापस लौटते हैं और दुष्यन्त–शकुन्तला के गंधर्व विवाह का समाचार सुनकर प्रसन्न होते हैं। इसके आगे नाटक की कथाद्रुत गति से शीर्ष परिणति की ओर बढ़ती है। शाकुन्तल नाटक का चतुर्थ अंक उसका सर्वोत्तम अंश और प्राण कहा गया है। कण्व ऋषि तपस्विनी गौतमी और दो ऋषिकुमारों के साथ पुत्री शकुन्तला को राजा दुष्यन्त की राजधानी को भेजते हैं। पालिता पुत्री की विदाई के समय का अतीव करुण चित्रण कालिदास ने किया है। संन्यासी कण्व भी पुत्री की विदाई पर रो पड़ते हैं।

नाटक के पाँचवे अंक में जब शकुन्तला ऋषिकुमारों द्वारा राजा दुष्यन्त के समक्ष प्रस्तुत की जाती है तो दुर्वासी जी के शाप के कारण राजा उसे पहचान नहीं पाते। बहुत समझाने पर भी नहीं मानते। ऋषिकुमार शकुन्तला को वहीं छोड़कर वापस अपने आश्रम चले जाते है। दुष्यन्त की दी हुई अंगूठी सखी की गलती से तालाब में गिर गई है। शकुन्तला असहाय हो जाती है। इस प्रक़ार तिरस्कृत

और अपमानित शकुन्तला को इसी समय उसकी माँ अप्सरा मेनका उड़ा ले जाती है और मारीचि ऋषि के आश्रम में पहुँचा देती है।

छठे अंक में राजसेवकगण एक केवट को पकड़कर राजा दुष्यन्त के दरबार में प्रस्तुत करते हैं। उस केवट के पास राजा का नाम अंकित स्वर्ण मुद्रिका पाई गई है जो उसे मछली के पेट से मिली है। अंगूठी को देखते ही दुर्वासा ऋषि के शाप का अंत हो जाता है और दुष्यन्त को शकुन्तला की सारी स्मृति लौट आती है। अब वह शकुन्तला के लिये तड़पने लगता है। किन्तु इसी समय देवराज इन्द्र का दुष्यन्त को बुलावा आता है। इन्द्र का सारथी मातलि उन्हें ले जाता है और अंतिम अंक में जब राजा दैत्यों को हराकर मारीच ऋषि के आश्रम में पहुँचते हैं तो विरहिणी शकुन्तला और पुत्र सर्वदमन को देखते हैं। पुत्र सर्वदमन सिंह शावक से खेल रहा होता है। वह पिता दुष्यन्त और माता शकुन्तला का मिलन कराता है। ऋषि मारीच उन्हें आशीर्वाद देकर कृतार्थ करते हैं। यहीं नाटक की सुखद समाप्ति होती है।

महाकवि कालिदास का दूसरा सुप्रसिद्ध नाटक विक्रमोर्वशीयम् है। यह पाँच अंकों का एक त्रोटक (नाटक का एक प्रकार) है जिसमें प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठान) के राजा पुरूरवा और स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी की प्रेमकथा का नाटकीय प्रस्तुतीकरण किया है। पुरूरवा और उर्वशी की कथा अभिज्ञान शाकुन्तल की कथा की भाँति पद्मपुराण से ली गयी है। कथा में कालिदास ने कविस्वातंत्र्य से कुछ स्थानों पर परिवर्तन अवश्य किये हैं।

सूर्योपस्थान से लौटते हुये राजर्षि पुरूरवा मार्ग में अप्सराओं का क्रन्दन सुनते हैं। सखी चित्रलेखा के साथ कुबेर के भवन से लौटती हुयी उर्वशी दैत्य केशी द्वारा अपहरण कर ली गयी है। राजा राक्षस केशी को हराकर उर्वशी और उसकी सखी को छुड़ा लेते हैं और आकाश से हेमकूट शिखर पर आते हैं। रथ के उतरते समय स्खलन भय से उर्वशी राजा के कंधे का आलंब लेती है। उसके स्पर्श से राजा

का शरीर पुलकित हो जाता है। उर्वशी में भी प्रेम के अंकुर फूटते हैं। इसके उपरान्त संयोग और वियोग के कई दृश्यों को पार करती हुई पुरूरवा और उर्वशी की प्रणय कथा आगे बढ़ती है। नाटक के द्वितीय अंक में नाटक के नायक पुरूरवा की परिणीता राजमहिषी औशीनरी दासियों सहित प्रमदवन में आती है और छिपकर राजा और विदूषक की उर्वशी विषयक प्रेमकथा सुन लेती हैं। विदूषक की चूक से उर्वशी का प्रेमपत्र भी गिरकर हवा में उड़कर महारानी के हाथों में पहुँच जाता है और वह अतिशय क्रुद्ध होती हैं। उधर उर्वशी भी भरतमुनि द्वारा आयोजित लक्ष्मी–स्वयंवर नाटक में लक्ष्मी की भूमिका करते हुये एक बड़ी चूक कर बैठती है। संवाद में एक स्थल पर जहाँ उसे बोलना था कि मेरा मन पुरूषोत्तम में आसक्त है, उर्वशी ने शून्य मन से कह दिया, मेरा मन पुरुरवा में आसक्त है। इस पर भरतमुनि अतीव कुपित हुये और उन्होंने उर्वशी को स्वर्गलोक से बाहर चले जाने का शाप दे दिया। देवेश इन्द्र ने किसी तरह उन्हें शान्त किया और शाप की अवधि पुत्रजन्म पर्यन्त करा दी।

स्वर्ग से निष्कासित होकर उर्वशी पृथ्वी पर आती है और उसका पुरूरवा से अभिसार होता है।

बीच में विप्रलंभ की स्थिति उत्पन्न करके कवि ने नायक और नायिका के संयोग की पुष्टि की है। वियोग के दृश्यों में नाटक के चतुर्थ अंक में कुछ स्थल अतीव कोमल और मर्मस्पर्शी हैं जहाँ राजा नाचते हुये मयूर से उसके हर्ष का कारण पूँछता है और उसकी प्रिया का कोई समाचार न बताने वाले हंस को उपालंभ देता है और भौरे से कहता है, मधुकर तुमने मेरी प्रिया के मुखंच्छवास की सुगन्ध कभी नहीं पायी, अन्यथा इन कमल के फूलों में तुम न चिपके होते।

पाँचवे अंक में च्यवन ऋषि के आश्रम से एक तपस्विनी कुमार आयुष को लेकर आती है और उसे च्यवन मुनि की आज्ञा से राजा को सुपुर्द करती है। यह कुमार पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम का प्रसून

उन्हीं का पुत्र है। राजा पुत्र को हृदय से लगाता है किन्तु उर्वशी दुःखी हो जाती है, क्योंकि शाप के अनुसार पुत्र–दर्शन हो जाने पर उसके स्वर्ग वापस लौटने का समय आ गया है।

किन्तु उसी समय देवर्षि नारद इन्द्र का संदेश लेकर आते हैं कि स्वर्ग में देवासुर संग्राम छिड़ गया है और देवेश इन्द्र ने महाराज पुरूरवा की सहायता माँगी है। पुरूरवा राजकुमार आयुष का राज्याभिषेक करके उर्वशी सहित स्वर्ग को चले जाते हैं। यहीं नाटक का सुखद अंत होता है।

रस परिपाक, चरित्र चित्रण, भावानुभाव, रति, गुण सभी दृष्टि से विक्रमोर्वशीयम् एक उत्कृष्ट रचना है।

कालिदास का प्रकृति वर्णन

प्रकृति वर्णन में बाल्मीकि के बाद कालिदास संस्कृत साहित्य के सबसे बड़े कवि हैं। अथवा यह कहा जाय कि रामायण में जो अनुपम प्रकृति वर्णन आदिकवि बाल्मीकि की लेखनी से स्फुरित हुआ, वह और अधिक विकसित तथा रसमय रूप में श्रृंगार सम्राट कालिदास की वाणी से मुखरित हुआ। कालिदास के दो गीतकाव्य ऋतुसंहारम् और मेघदूतम् पूरे के पूरे श्रृंगार और प्रकृतिचित्रण की गीतमाला ही हैं।

ऋतुसंहारम् में वसन्त का वर्णन कितना सीधा, पर कितना सर्वांगीण है। एक ही श्लोक में सारे जड़ चेतन जगत पर बसन्त की छाई हुयी बहार पुंजीकृत करके रख दी गई है–

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं, स्त्रियाः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषाःदिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रियं चारुतरम् वसन्ते।।

इसी तरह वर्षा के आगमन को कालिदास एक ससैन्य राजा के आगमन के रूप में चित्रित करते हैं–

ससीकराम्भोधरमत्तकुंजरः तडितपताकोशनि शब्दमर्दलः।
समागतो राजपद उद्धतद्युतिः घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये।।

कैलाश पर्वत के उपान्त में गंगा के तट पर बसी अलकापुरी का वर्णन करते हुये प्रणयी यक्ष कहता है हे मेघ ! प्रणयी कैलाश के अंक में सोयी हुई और गंगा के स्रस्त बिखरे हुये दुकूल वाली (स्रस्त गंगा दुकूलां) अलकापुरी को देखकर ही तुम पहचान लोगे।

समुद्र का यह वर्णन देखिये–श्री रामचन्द्र जी पुष्पक विमान पर आरूढ़ लंका से लौट रहे हैं। मार्ग में सबसे पहले समुद्र दिखाई पड़ता है। वे प्रिया वैदेही से कहते हैं–

वैदेहि पश्यामलयाद्वविभक्तंमत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।
छायापथेनैव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम्।।

समुद्र पर निर्मित सेतु, फेनिल अम्बुराशि वाले सागर और तारों से भरे स्वच्छ नीले आकाश की कैसी सांगोपांग उपमा है।

समुद्र के रौद्र रूप से तो सभी परिचित हैं। कालिदास का एक समुद्र वर्णन है जो समुद्र को प्रणयी रूप में चित्रित करता है।

"मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृतिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः।।"

सागर अपने तरंगो रूपी अधरों से प्रिया सरिताओं के मुख का बार–बार चुम्बन करता है और अपने तरंगाधर नदियों को पीने हेतु अर्पित करता है।

पुष्पक विमान से उड़ते हुये राम के मुख से कालिदास ने नीचे की पृथ्वी, नदियों और पर्वतों का जैसा वर्णन कराया है, वैसा सजीव और सरस वर्णन वायुयान से यात्रा करने वाला कोई यात्री शायद ही कर सके। हवाई यात्रा के दौरान एक–एक करके नीचे के दृश्य सामने आते हैं और बड़े स्वाभाविक रूप में श्रीराम जानकी जी को

उन्हें दिखाते हुये चलते हैं। प्रत्येक वर्णन में एक से एक दृश्य, उपमायें और नवोन्मेष देखने को मिलते है।

"करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चंडिकुतूहलिन्या।

आमुंचतीवाभरणम् द्वितीयम् उद्‌भिन्नविद्युतवलयोघनस्ते।।

विमान पर बैठी हुई वैदेही कुतूहल वश खिड़की से अपना हाथ बाहर निकालती हैं। वह आकाश में उड़ रहे बादलों से टकराता है। बादलों में बिजली चमकती है और ऐसा लगता है कि मानों बादलों ने सीता जी के हाथ में एक और कंगन पहना दिया हो। इसी तरह ऊपर से गंगा जी को देखकर श्री राम कहते हैं। देखो, सीते यह स्वच्छ् जलवाली दूरी के कारण पतली लगने वाली, मंदाकिनी पृथ्वी के कंठ में पड़ी मुक्तामाला सी लगती है।

"एषाप्रसन्नस्तमितप्रवाहा सरितविदूरान्तरभावतन्वी

मंदाकिनी भातिनगोपकंठेमुक्तावलीकंठगतेव भूमेः।।

रघुवंश और कुमारसंभव में अनेक स्थलों पर कालिदास ने रात्रि का, प्रभात का और संध्या का वर्णन किया है। रघुवंश में 5वें सर्ग में जहाँ वैतालिक गण कुमार अज को जगाने के लिये प्रातः गाते हैं, वहाँ प्रभात का नितान्त कोमल वर्णन है–

कुमार संभव के 8वें सर्ग में अनुपम साांध्य वर्णन है–

"पूर्वभागतिमिर प्रवृतिभिः व्यक्तपंकमिव जातमेकतः,

रवम् द्धतातपजलं विवस्वता भाति किंचिदिव शेषवत् सरः।।

रघुवंश में चन्द्रोदय वर्णन का एक अतिशत मनोहारी चित्र मिला। संध्या हो गई है, पूर्व से चन्द्रमा का उदय हो रहा है। वह अपनी सुकोमल मरीचि उँगलियों से निशा सुन्दरी के तिमिर रूपी केश जाल को समेटकर उसके मुख का चुम्बन सा कर रहा है। मुख निखर उठा है और सुन्दरी राका ने अपने सरोज लोचनों को आनन्दातिरेक में बंद कर लिया है।

अंगुलिभिः केशसंचयम् संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुडमलीकृत सरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी।।"

ऐसा सुकोमल, सांगोपांग और चित्रमय सांध्यवर्णन शायद किसी भी साहित्य में दुर्लभ है।

चन्द्रोदय का एक अन्य चित्र भी देखने योग्य है। चन्द्रमा का उदय हो रहा है। नीले आकाश का गहरा अन्धकार छँट रहा है और नभतल उजला सा हो रहा है। कवि कहता है। देखो पार्वती यह मानसरोवर है, जिसे हाथियों ने मटमैला कर दिया था, अब कितना स्वच्छ हो गया है।

"पश्य पार्वति नवेन्दु रश्मिभिः भिन्द्रसान्द्रतिमिरं नभस्तलम्।
लक्ष्यतेद्विरदभोग दूषितं सप्रसादं इव मानसं सरः।।"

कालिदास की उपमायें

कालिदास की उपमायें विश्वविख्यात हैं। कहा जाता है–

उपमा कालिदास्य भारर्वेरर्थ–गौरवं
दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयोगुणाः।।

यो तो सभी कवियों ने उपमा अलंकार का अपने काव्य में प्रयोग किया है। किन्तु उपमाधीश्वर कालिदास के हाथों में उपमा अलंकार ने एक अलौकिक, अनिर्वचनीय तेजस्विता पाई। कालिदास की उपमायें अलंकार का मानदण्ड बन गई हैं। युग–युग से सहस्रों कवियों को ये उपमायें प्रेरणा देती रही हैं और उनकी प्रखरता, शक्तिवत्ता, और तेजस्विता तक कोई कवि पहुँच नहीं पाया। जो उपमायें और जिस तरह का सादृश्य अन्य किसी कवि के मस्तिष्क में नहीं आया, उन्हें आविष्कृत करके और असाधारण लालित्य और कोमलता से उन्हें अभिव्यक्त करकें कालिदास उपमा सम्राट की पद्वी पर आसीन हुये हैं।

मेघदूत में आम्रकूट शिखर पर लटकते हुए बादलों की उपमा देते हुए कालिदास कहते है–

छन्नोपान्तः परिणतफलओतिभिः काननाम्रैः।

त्वयि आरूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।।

नूनं यास्यसि अमरमिथुनप्रेक्षणीयामावस्थां

मध्ये श्यामः स्तनइव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।।

पृथ्वी का विराट स्वरूप और उसके ऊपर पर्वत श्रेणियाँ, उन पर पके हुए फलों के बगीचे तथा उन पर लटकते हुए काले बादल–यक्ष कहता है कि हे मेघ जब तुम इस रूप में पर्वतों के ऊपर लम्बमान होगें तो देवता गण बड़ी उत्सुकता से ऊपर से देखेंगे और उन्हें यह लगेगा कि नीचे पृथ्वी के सुन्दर गौरवर्ण पीले स्तनों पर तुम श्यामता रूप में बैठे हुए हो।

एक अन्य उपमा देखे–पार्वती वाल्यावस्था को लाँघ कर यौवन में प्रवेश कर रही हैं। कालिदास कहते हैं–

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिः भिन्नमिवारविन्दम्।

वभूव तस्याश्चतुरस्रशोभिवपुर्विभक्तं नवयौवनेन।।

शरीर में यौवन का पर्दापण क्या हुआ, तूलिका ने मानो एक चित्र को उद्घाटित कर दिया। उसमें रंग भर दिये। सूर्य की किरणों ने मानो कमल को विकसित कर दिया। पार्वती का सीधा सादा समतल शरीर एकाएक शोभायुक्त और नतोन्नत हो गया।

इन्दुमती के स्वयंम्बर की यह उपमा विश्व विश्रुत है।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय स्वयंवरा सा।

नरेन्द्र मार्गादृइवप्रपेदे विवर्णभावं स स भूमि पालः।।

स्वयम्बर के सभागार में इन्दुमती पंक्ति में पीठासीन राजाओं के सामने से गुज़रती है तो ऐसा लगता है मानों वह एक चलती फिरती

दीपशिखा है जो पीछे छूटे हुए राजाओं का मुख मलिन करती हुई आगे बढ़ रही है। कितनी सांगोपाँग उपमा है और कितनी चित्रमय ! ऐसा चित्रमय वर्णन किसी भी साहित्य में दुर्लभ है।

एक और उपमा का उल्लेख करूँगा। रघुवंश में राजा दिलीप की महिषी सुलक्षणा नंदिनी धेनु के पीछे–पीछे चल रही हैं। उसकी उपमा देते हुए कालिदास कहते हैं–

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसम् अपांसुलानां धुरिकीर्तिनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।।

इस तरह की असंख्य नवाभिनव उपमायें कालिदास के काव्य को पद–पद पर अलंकृत करती हैं। ऋषि कन्या शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के मुख से जो शब्द फूट पड़ते हैं और उसके अस्पृष्ट सौन्दर्य के वर्णन के लिये कालिदास जिन उपमाओं को ढूढ़कर लाते हैं, वे साहित्य प्रेमियों का कंठहार बन गये हैं।

अनाघ्रातं पुष्पं किशलयमलूनं कररुहैः।
अनाविद्धं रत्नं मधुनवम् अनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघम्।
न जाने भोक्तारं कम् समुपस्थास्यति विधिः।।

शकुन्तला क्या है ? एक ऐसा पुष्प है जिसे अभी तक किसी ने सूंघ कर उच्छिष्ट नहीं किया है। वह ऐसा किशलय है जिसे किन्ही हाथों ने नहीं छुआ है। ऐसा रत्न है जो कभी तराशा नहीं गया है। ऐसा नवीन मधु है जिसका स्वाद अभी तक किसी ने नहीं चखा है। ऐसा रूप है जो पुण्यों का अखण्ड फल है।

कालिदास की सूक्तियाँ

कालिदास को संसार श्रृंगार सम्राट और उपमा सम्राट, रसमय काव्य के स्रष्टा और प्रकृति चित्रणं के अन्यतम शिल्पी के रूप में

जानता है। किन्तु कविकुल गुरु का एक और रूप भी है। उनके काव्यों और नाटकों में स्थान–स्थान पर ऐसी सूक्तियाँ स्फुटित हुई हैं जो अपने शाश्वत रूप और उत्कृष्टतम अभिव्यंजना के कारण जन–जन का कंठहार बन गई हैं और बारम्बार दैनन्दिन व्यवहार में विद्वानों और इतर जनों द्वारा उद्धृत की जाती हैं। महान कवियों की यह विशेषता होती है कि उन्होंने किसी तथ्य को एक बार कह दिया तो उससे बेहतर रूप में उस बात को कोई नहीं कह सकता। इस प्रकार की सूक्तियों और शाश्वत सत्यार्थ वाक्यों से कालिदास का साहित्य भरा पड़ा है जिन्हें अंग्रेजी में (quotable quotes) कहते हैं।

1. **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**
   शरीर सबसे पहला धर्म का साधन है।

2. **किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।**
   जो सुन्दर है, उस पर सब कुछ सुन्दर लगता है।

3. आजकल (Voice of Conscience) की बहुत चर्चा होती है। कालिदास 2,000 वर्ष पहले दुष्यन्त के मुँह से कहलाते हैं

   सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः, करणप्रवृतयः।
   किसी विषय में सन्देह की स्थिति आ जाय तो हृदय की आवाज सुनें। वही सच है।

4. **विकारहैतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।**
   विकार अर्थात् स्खलन की स्थितियों में भी जो विकृत/स्खलित नहीं होते वे ही धीर पुरुष हैं।

5. **प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।**
   आपके प्रिय को जो अच्छी लगे वही सुन्दरता सुन्दरता है।

6. **पदं हि सर्वत्रगुणैर्विधीयते।**
   गुण सभी जगह अपना स्थान बना लेते हैं।

7. **मेघदूत में यक्ष का यह वाक्य—यात्र्चा मोधावरमधिगुणे नाधमेलब्धकामा।**

किसी गुणवान व्यक्ति से की गई, याचना निष्फल हो जाय तो भी अधम व्यक्ति से की गई सफल याचना से श्रेयस्कर है।

8. **न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्षते।**

धर्म—वृद्ध जनों की आयु नहीं देखी जाती।

9. **अर्थो हि कन्या परकीय एव।**

सच है कि कन्या पराई वस्तु है।

10. **क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधते।**

फल प्राप्त हो जाने से क्लेश नया उत्साह देता है।

11. **मनोरथानां अगतिर्न विद्यते।**

मनोरथों की उड़ान बहुत ऊँची है।

12. **मरणं प्रकृतिः शरीराणाम्।**

शरीर का अन्त होना ही है।

13. **पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्व नवमित्यवद्यम्।**

सब कुछ जो पुराना है वही अच्छा है, ऐसा नहीं है और न नया सब कुछ अच्छा होता है।

14. **नीचैर्गच्छति उपरि च दशाचक्रनेमिक्रमेण।**

जीवन में सुख दुःख और उन्नति अवनति की दशा पहिये के आरों (शलाकाओं) की भांति ऊपर और नीचे आती जाती रहती है।

महाकवि कालिदास का काव्य पारावार अतीव विशाल, अति गंभीर, दुर्लंघ्य और दुस्तर है। उसके तट पर बैठकर यंदृच्छया हाथ में आये कुछ मोतियों से ही संतोष करना होगा। स्वल्प बुद्धि की तरी से इस पारावार को पार करने का प्रयास उपहास का कारण न बने, यह सोचकर यहीं समाप्त करता हूँ।

**

वाल्मीकिरामायणम्

रामायण की अलौकिक कथा के प्रारम्भ में ही ब्रह्माजी महर्षि वाल्मीकि से कहते हैं :–

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।

तावद रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

पृथ्वी तल पर जब तक पर्वत रहेंगे, जब तक नदियाँ रहेंगी, तब तक यह रामायण कथा जन जन में प्रचारित होती रहेगी। युग द्रष्टा ब्रह्माजी का यह वचन अक्षरशः सच निकला। कई-कई सदियों से रामायण की यह अद्भुत कथा भारतीय संस्कृति, भारतीय आदर्शों और भारतीय धर्म, (जो मानवधर्म ही है), की गंगोत्री के रूप में अधिष्ठित रही है, और आज भी है। जब भी जीवन में उच्चतम उपमानों की आवश्यकता पड़ी, वे रामायण के पात्रों और उनके कृत्यों से लिये गये। जब भी किसी स्त्री को सती, साध्वी, पत्यैकव्रता कहना हुआ, तो उसे सीता कह दिया गया। इतना पर्याप्त था। जब भी सच्चे, एकनिष्ठ अनुज का उदाहरण देना हुआ या त्याग और अविकम्प भ्रातृ–निष्ठा इंगित करनी हुई तो बस लक्ष्मण और भरत का नाम ले लिया गया। जब भी अडिग भक्ति और शक्तिपुंज का उपमान खोजा गया तो हनुमान का नाम आ गया। रामायण के भक्त शिरोमणि महावीर हनुमान आज इस देश के कोटि कोटि जनों के संकटमोचक हैं। यह है वाल्मीकि रामायण का भारतीय जीवन और संस्कृति पर प्रभाव और अमिट अंकन।

महर्षि वाल्मीकि कविता के जनक हैं। क्रीड़ारत–क्रौंचयुगल में से एक के वध के करुण दृश्य से द्रवित वाल्मीकि के मुख से निसृत उनके उद्‌गार के साथ प्रथम कविता का जन्म हुआ। वे आदिकवि हैं और उनकी रामायण आदि कविता है।

वाल्मीकि की रामायण कथा से प्रेरणा लेकर और उसकी विषयवस्तु को तथा उसके एक–एक अंश को लेकर अधिसंख्य संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, बांग्ला, तमिल, ओरिया, असमी और अन्यान्य भाषाओं के कवियों, नाटककारों और लेखकों ने रचनायें की और विपुल यश अर्जित किया।

सुभाषित पद्धति के प्रणेता शार्ङ्गधर कहते हैं :–

कवीन्द्रं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणी कथाम्।

चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः।।

मुख्यतः वाल्मीकि रामायण को आधार मानकर तमिल में कम्बरामायणम्, तेलगु में रंगनाथ श्रीमोल्ल और भास्कर रामायण, बंगला में कृत्तिवास रामायण, कन्नड़ में पम्परामायण, असमी में माधवकंदकली रामायण, पंजाबी में गोविन्द रामायण और हिन्दी में सुविख्यात रामचरित मानस की रचना हुयी। ये सभी रामायणग्रंथ अपनी अपनी भाषाओं में बहुत आदृत हुये।

सर्वाधिक यश और लोकप्रियता अवधी में लिखी गयी रामचरितमानस को मिली, जिसकी चौपाइयाँ कोटि कोटि भारतीयों का कंठहार बन गयीं। मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास वाल्मीकि रामायण को पुराण निगमागम सम्म्त मानते हैं।

विदेशी भाषाओं में अंग्रेजी, जर्मन, इटालियन, आदि में वाल्मीकि रामायण के अनेक पद्यानुवाद और गद्यानुवाद हुये। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी में प्रोफेसर ग्रिफिक का छन्दबद्ध अनुवाद, रमेशचन्द्र दत्त का पद्यानुवाद और एम.एन. दत्त कृत गद्यानुवाद; जर्मन में एफ सकर्ट कृत संक्षिप्त पद्यानुवाद इटैलियन में जी. गैरिसी का अनुवाद।' संस्कृत साहित्य में एवं हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में रामायण की कथा पर असंख्य महाकाव्य, खंडकाव्य, नाटक, स्तोत्र और चंपू लिखे गये हैं। उनकी सूची देना दुष्कर कार्य है।

कविकुलगुरु कालिदास के रघुवंशम् और भवभूति के उत्तररामचरितम् से लेकर जानकीहरणम्, राघवपांडवीयम्, प्रसन्नराघवम् और आधुनिक युग में अप्पय दीक्षित के रामायण सार संग्रह, जानकी चरितम्, गद्यरामायणम्, राघवीयम्, रामकथामृतम्, मेघनादवधम् रावणवधम्, चंपू राघवम्, मैथिलीशरणगुप्त के साकेत महाकाव्य, माडमूलकर के गीत रामायण, श्रीधर के रामविजय तक अधिसंख्य काव्य लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त रामकथा पर लिखे गये पाश्चात्य विद्वानों और भारतीय विद्वानों के शोध प्रबंधों और लेखों की संख्या भी अपार है। डा. श्रीधर वर्णेकर ने रामकथा की विषयवस्तु को लेकर लिखे गये तीस से अधिक अर्वाचीन संस्कृत नाटकों की नामावली दी है।

रामायणम् के इस विचित्र सर्वातिशायी आकर्षण का रहस्य क्या है ? उसके कथ्य में, या उसके काव्यशिल्प में ऐसा क्या है जो उसे इतने बड़े प्रेरणास्रोत के रूप में और ऐसी कालजयी लोकप्रियता के शिखर पर हजार वर्षों से अधिष्ठित किये हुए है। इस बिन्दु पर सविस्तर और अधिकारिक समीक्षा इस लघु लेख में संभव और साध्य नहीं है। किन्तु मैं संक्षेपतः उसे इंगित करने का प्रयास करूँगा।

वाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ मुनिश्रेष्ठ नारद और वाल्मीकि के प्रश्नोत्तर अर्थात् जिज्ञासा और समाधान से होता है। वाल्मीकि पूछते हैं :

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः।।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनुसूयकः।

कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि में।।

हे मुने। इस समय इस लोक में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन (व्यक्ति) है ? कौन ऐसा है जो चरित्रवान है, प्राणीमात्र का हितकारी है, विद्वान, सामर्थ्यवान और प्रियदर्शन (सुन्दर) है ? कौन है जो आत्मवान, क्रोध पर विजय पाने वाला, कान्तिमान और ईर्ष्याविमुक्त है तथा कौन है संग्राम में जिसके क्रुद्ध होने पर देवता भी डर जाते हैं ? हे महर्षे मुझे बहुत कौतूहल है। मैं यह सब सुनना चाहता हूँ।

नारद जी उत्तर देते हैं :

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।

नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी।।

इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न एक ऐसे पुरुष हैं। वे लोगों में राम के नाम से विख्यात हैं। वे अपने को वश में रखने वाले, महाबलशाली, कान्तिमय, धैर्यवान और जितेन्द्रिय हैं।

इसमें और इसके अनुवर्ती दस श्लोकों में नारद जी राम के गुणों का, उनके पौरुष का, धैर्य का, धर्म परायणता का, प्रतिभा का और सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। इसके उपरान्त संक्षेप में राम की कथा सुनाकर नारद जी चले जाते हैं। तदुपरान्त वाल्मीकि जी तमसा नदी के तट पर जाकर अपने शिष्य भारद्वाज के साथ विचरण करते हैं। वहीं क्रौंचवध का करुण दृश्य देखकर वे प्रथम कविता श्लोक बोल पड़ते हैं :

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

तदुपरान्त महातेजस्वी लोक स्रष्टा ब्रह्माजी वहां आते हैं और वाल्मीकि मुनि से कहते हैं कि तुम्हारे मुख से निकला यह वाक्य

श्लोक ही है। यह प्रथम कविता है। अब तुम श्रीराम का सम्पूर्ण चरित्र वर्णन करो, जैसा तुमने नारद से सुना है। इस प्रकार आरम्भ हुयी रामायण की यह वृहत श्लोकबद्ध रचना। नारदजी ने इक्ष्वाकुवंश प्रभव जिस राम की कथा संक्षेप में वाल्मीकि को सुनाई थी, वह राम शरीरधारी धर्म ही थे। 'रामो विग्रहवान् धर्मः।'

और धर्ममूर्ति राम की गाथा वाल्मीकि जी ने ब्रह्मा जी के आदेशानुसार श्लोकबद्ध की।

राम साक्षात् विग्रहधारी धर्म हैं। वे मनुष्य के कर्तव्याकर्तव्य के आदर्श और उपमान हैं। उन्होंने बालकाल से लेकर आजीवन सारे सांसारिक थपेड़ों के बीच गुज़रते हुये, पुत्र के रूप में, युवराज के रूप में, राजा के रूप में, मित्र के रूप में, भक्तों के शरण्य के रूप में, युद्ध भूमि में, सुख, दुख, उत्कर्ष, अपकर्ष, वैभव, पराभव में, हर्ष और विषाद में वही किया जो एक व्यक्ति को करना चाहिए। यही रामायण की प्रेरणा और लोकप्रियता का रहस्य है। रामायण की कथा कर्तव्याकर्तव्य के इसी आदर्श केन्द्र बिन्दु के परितः चलती है।

रामायण के अन्य पात्र भी यही करते हैं। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न निस्वार्थ बंधु प्रेम के प्रतीक हैं। सीता पति द्वारा निर्वासित होने के बाद भी पति के कल्याण की ही प्रार्थना करती हैं। महावीर हनुमान भक्ति और पौरुष के प्रतीक हैं।

इस महाकाव्य में आदि से लेकर अन्त तक सतत श्रीराम के अनुकरणीय और आदर्श चरित्र का प्रतिष्ठापन करने के साथ ही महर्षि वाल्मीकि ने समय समय पर किन्हीं किन्हीं बहानों से राजा के द्वारा, भाई के द्वारा, पत्नी के द्वारा, पुत्र के द्वारा, और मित्र के द्वारा करणीय मानक आचार का विस्तार से वर्णन किया है। उदाहरणार्थ जब भरत राम को मनाने और अयोध्या वापस बुलाने के लिये चित्रकूट पहुँचते हैं तो उनका और अयोध्या का कुशलक्षेम पूँछने के बहाने श्रीराम उन्हें राजनीति का उपदेश देते हैं और यह बताते हैं कि

एक धर्मपरायण, कर्तव्य निष्ठ, प्रभावी, शक्तिशाली और पूर्णतः सतर्क राजा को क्या करते रहना चाहिए। यह उपदेश राजाओं/शासकों के लिये आचार संहिता स्वरूप है और आज भी प्रासंगिक है।

भरत को राज्यसंचालन की व्यवहारिक शिक्षा देते हुए राम कहते हैं "राजकुमार, तुम प्रतिदिन पूर्वान्ह में मुख्यराजपथ पर जाकर एक बार प्रजाजनों को दर्शन देते हो न ?

कच्चिद् दर्शयसे नित्यं मानुषाणां विभूषितम्।

उत्थायोत्थाय पूर्वान्हे राजपुत्र महापथे।

क्या सभी कर्मचारी निःशंक तुम्हारे समक्ष आ जाते हैं, या सभी सदा तुमसे दूर दूर रहते हैं ? कर्मचारियों के संबंध में मध्यम स्थिति ही श्रेयस्कर है –न अधिक सामीप्य और न अधिक दूरी।

कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षस्तेऽविशंकया।

सर्वे वा पुनरुत्सृष्टा मध्यमेवात्र कारणम्।।

शासन में भ्रष्टाचार अपने पाँव न फैलाये, इस पर राम की दृष्टि है। समाज में भले और निरपराध नागरिकों का उत्पीड़न न हो, यह सुनिश्चित करने और उसी प्रकार चोरों तथा सिद्धदोष व्यक्तियों को दण्ड अवश्य मिले, इस बिन्दु पर राम कहते हैं। तुम्हारे राज्य में कहीं ऐसा तो नहीं होता कि श्रेष्ठ और निर्दोष व्यक्ति को कोई दोष लगा दे और समुचित छानबीन के बिना उसे लोभ के कारण दण्ड दे दिया जाये।

पुनः चोरी करते देखा गया, या पकड़ा गया चोर धन के प्रभाव से अर्थात् भ्रष्टाचार के कारण छोड़ तो नहीं दिया जाता ?

कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा।

अदृष्टवा शास्त्रकुशलैर्न लोभाद् बध्यते शुचिः।।

गृहीतश्चैव पृष्ठश्चकाले दृष्टः सकारणः।

कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलाभान्नरर्षभ।।

राज्य में दुर्बल और निर्धन जनों को धनीवर्ग से विवाद होने पर पूरा न्याय मिले और न्याय करने वाले धन से प्रभावित न हों, इस पर भी राम की पैनी दृष्टि है।

व्यसने कच्चिदाठ्यस्य दुर्बलस्य च राघव।

अर्थ विरागाः पश्यन्ति तवामात्याः बहुश्रुताः।।

पुनः राम कहते हैं, भरत। तुम नीतिशास्त्र की आज्ञा के अनुसार चार या तीन मन्त्रियों के साथ सबको एकत्र करके, और सबसे अलग अलग भी मंत्रणा करते हो न ? सारांश यह कि राजा स्वेच्छाचारी और निरंकुश न हो एवं मंत्रियों की राय से राज्य संचालन करें।

मन्त्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा।

कच्चित् समस्तैवंर्यस्तैश्च मंत्रं मन्त्रयसे बुध।।

सुदृढ़, संपन्न, पारदर्शी, निष्पक्ष, भ्रष्टाचार विहीन और दुर्बल वर्ग को भी न्याय सुलभ कराने वाले सुराज के जो संचालन सूत्र श्री राम द्वारा युवराज भरत को इंगित किये गये, वे आज कई सहस्र वर्षों बाद भी कितने प्रासंगिक हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार अत्रि मुनि के आश्रम में सीता–अनुसूया संवाद में तपोमूर्ति अनुसूया सीता को बड़े स्पष्ट शब्दों में एक विवाहित स्त्री द्वारा करणीय आचरण की शिक्षा देती हैं।

दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।

स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।।

नातो विशिष्टम् पश्यामि बान्धवं विमृशन्यहम्।

सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतभिवाव्ययम्।।

विशुद्ध काव्य–कला की दृष्टि से भी वाल्मीकि रामायण बहुत ऊँचे स्तर पर प्रतिष्ठित है। रामायण कथा में जहाँ–जहाँ करुण दृश्य आये हैं, वहाँ करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। जैसे रामवन गमन के समय माता कौशल्या का विलाप, अथवा राम की कुशशय्या को देखकर भरत की शोकाकुल मनः स्थिति।

तं समीक्ष्य व्यवसितं पितुर्निर्देश पालने।
कौशल्या वाष्पसंरूद्धा वचो धर्मिष्ठमब्रवीत्।
यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्ठान्यान्नानि भुंजते।
कथं स भोक्ष्यते रामो वने भूल फलान्ययम्।
त्वया विहीनां इह मां शोकाग्निरतुलो महान्।
प्रधक्ष्यति यथा काष्ठं चित्रभानुर्हिमात्यये।।

पिता की आज्ञा के पालन को उद्यत राम को देखकर अश्रुरुद्ध कौशल्या उस धर्मिष्ठ से बोलीं। जिस राम के भृत्य और दास मिष्ठान भोजन करते हैं, वह राम वन में फल मूल कैसे खायेगा।

तुमसे विमुक्त होने पर यह प्रबल शोकाग्नि मुझे ग्रीष्म में सूखी लकड़ियों को आग की भाँति जला डालेगी।

राम की कुशशय्या को देखकर भरत रो पड़ते हैं

अजिनोत्तर संस्तीर्णे वरास्तरणसंचये।
शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले।।
न नैनं दैवतं किंचित् कालेन बलवन्तरम्।
यत्र दाशरथी रामो भूमावेवमशेत् सः।।
हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत् सभार्यः कृते मम।।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते हि अनाथवत्।।

इसी प्रकार राम सीता और लक्ष्मण के वन चले जाने पर अगले

दिन अयोध्यापुरवासियों और वहाँ की नारियों के विलाप का अत्यन्त करुण चित्रण हुआ है।

रामायण में प्रकृति वर्णन तो सर्वथा अद्वितीय है। इतने सहस्रों वर्षों के उपरान्त भी वह बिल्कुल नवीन है।

किष्किन्धा काण्ड के अट्ठाइसवें सर्ग में वर्षा का अद्वितीय वर्णन श्री राम के मुख से कराया गया है। ऐसा स्वाभाविक और चित्रमय वर्षा–वर्णन शायद ही कहीं साहित्य में अन्यत्र मिले। यहाँ वाल्मीकि जी ने वर्णन को सर्वथा नवीन और अस्पृष्ट उपमाओं से संजोया है।

रजः प्रशान्तं सहिमोथवायु
र्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ।।

निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति
द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति ।
दृष्ट्वा बलाका घनमभ्युपैति ।।

घनोपगूढं गगनं न तारा
न भास्करो दर्शनमभ्युपैति ।
र्न वैजलोघैर्धरणी वितृप्ता
तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशः ।।

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः
शैलेन्द्रकूटाकृति संनिकाशाः ।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा
मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः ।।

मेघाभिकामा परिसम्पतन्ती
सम्मोदिता भाति बलाकपंक्तिः ।

वातावधूता वरपौण्डरीकी
लम्बेव माला रुचिराम्बरस्य ।।

बहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तमजा वनान्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवंगमाः ।।

षटपादतन्त्रीमधुराभिधानं
प्लवैगमोदीरितकण्ठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदंगनादैः
वनेषु संगीतमिव प्रवृन्तम् ।।

धरती की धूल शान्त हो गयी है। अब वायु में शीतलता आ गयी है। ग्रीष्म के दोषों का प्रसार शान्त हो गया ह। राजाओं की युद्ध यात्रायें रूक गयी हैं। प्रवासी जन अपने देश को लौट रहे हैं।

वर्षाऋतु के इस प्रारम्भ काल में भगवान के शयन का समय आ गया है। निद्रा धीरे–धीरे भगवान के पास जा रही है। नदी तीव्र गति से समुद्र के पास जा रही है। हर्षित बलाकायें उड़कर बादलों की ओर जा रही हैं और कामपूरित नारी अपने प्रिय के सान्निध्य में पहुँच रही है।

आकाश बादलों से आच्छादित हो गया है। न रात में तारे दीखते हैं न दिन में सूर्य दिखाई पड़ता है। नूतन जलराशि से पृथ्वी तृप्त हो गयी है। तमाच्छादित दिशायें प्रकाशहीन हैं।

विद्युत की ध्वजा लगाये और बलाकाओं की शुभ्र माला पहने पर्वतशिखरों की आकृति वाले मेघ युद्धभूमि में खड़े गजराजों की भांति जोर जोर से चिंघाड़ रहे हैं।

मेघों की कामना हृदय में लिये उड़ती हुयी मुदित बलाकाओं की पंक्ति ऐसी जान पड़ती है मानों आकाश के गले में हवा से हिलती हुयी श्वेत कमलों की सुन्दर माला हो।

नदियाँ बह रही हैं। मेघ बरस रहे हैं। मन्तगज चिग्घाड़ रहे हैं। वनप्रदेश सुन्दर लग रहे हैं। अपनी प्रिया से वियुक्त जन चिन्तित हैं। मोर नाच रहे हैं और वानर खुश हो रहे हैं। भ्रमरों के वीणा गुंजन, मेढकों की ध्वनि के कण्ठताल और मेघों के मृदंग नाद से वनों में संगीतोत्सव प्रारम्भ हुआ सा लगता है।

मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः ।
मारूतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ।।
कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताड़ितम् ।
अन्तः स्तनित निर्घोषं संवेदनमिवांबरम् ।।
नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्तीप्रतिभाति मे ।
स्फुरन्ती रावणस्यांके बैदेहीव तपस्विनी ।।

मेघरूपी कृष्ण मृगचर्म और वर्षा की धारा रूपी यज्ञोपवीत को धारण किये हुये तथा वायु से पूरित गुफाओं (हृदय) वाले ये पर्वत मानों ब्रह्मचारियों की भांति विद्याध्ययन करने जा रहे हैं। आकाश में चमकती बिजलियाँ स्वर्ण कशाओं (कोड़ों) जैसी लगती हैं जिनकी मार से जनित वेदना के कारण आकाश मेघगर्जन के रूप में आर्तनाद कर रहा है।

नीले बादलों का आश्रय लेकर चमकती हुयी विद्युत मुझे रावण के अंक में छटपटाती तपस्विनी सीता सी लगती है।

इसी प्रकार 30वें सर्ग में शरद ऋतु का वर्णन भी अतीव अभिराम और चिर नवीन है। अभिनव उपमाओं से रंजित वाल्मीकि का यह शरद वर्णन देखिये :

रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रा, तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणः विभाति नारीव शुक्लांशुक संवृतांगी।।

मीनोपसंदर्शित मेखलानां ।
नदी वधूनां गतयोऽद्यमन्दाः
प्रभातकालेष्विवकामिनीनाम् ।।
सचक्रवाकानि सशैवलानि ।
काशैर्दुकूलैरिव संवृतानि ।।
सपत्ररेखाणि सरोचनानि
वधूमुखानीव नदीमुखानि ।।

मछलियों की करधनी सी पहने हुये नदियाँ अब मन्द गति से बह रही हैं। रात में पति के द्वारा उपभोग की गयी और प्रातःकाल अलसायी गति से चलने वाली कामिनियों की भाँति इन नदी बधुओं की गति अब (शरद के आने पर) मन्द हो गयी है।

(अब शरद ऋृतु आने पर) नदियों के मुख नववधुओं के मुख की भांति लग रहे हैं। उनमें बैठे चक्रवाक गौरोचन तिलक हैं, उनके शैवाल (सेवार) वधू के मुख पर चित्रित पत्रभंगी हैं। उनके काश बधू के मुख को ढकने वाले दुकूलवस्त्र हैं।

अयोध्याकाण्ड के 14वें सर्ग में चित्रकूट का तथा 15वें सर्ग में मंदाकिनी का वर्णन भी अतीव मनोहारी है। श्रीराम चित्रकूट की शोभा पर लुब्ध हो जाते हैं। प्रिया सीता को चित्रकूट के दृश्य दिखाते हुए राम कहते हैं :—

न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिविनाभवः

मनो में बाधते दृष्टवा रमणीयमिमं गिरिम्।

राम यहाँ तक कहते हैं कि यदि लक्ष्मण के और तुम्हारे साथ मैं यहां अनेकों शरद बिताऊँ तो मुझे शोक पीड़ित नहीं कर पायेगा।

यदीह शरदानेकास्त्वया सार्धमनन्दिते।

लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति।।

प्रकृति चित्रण से संबंधित रामायण के श्लोक कालिदास और भवभूति से लेकर सारे परवर्ती कवियों और समीक्षकों के लिय प्रेरणा स्रोत क्लासिक बन गये हैं और शतशः सुभाषितकोशों में उद्धृत हुए हैं।

मानव चेष्टाओं और घटनाओं के सजीव, चित्रमय और स्फुरित चित्रण में बाल्मीकि सर्वथा अप्रतिम हैं। यदि आप सुन्दर काण्ड के प्रारम्भ में हनुमान जी के समुद्र लंघन का विशद वर्णन पढ़ें तो यह तथ्य प्रखर रूप से उजागर होकर आपके समक्ष आयेगा।

हनुमान सीता जी की खोज करने और इस हेतु लंका पहुंचने के लिये सागर को लाँघने का निश्चय करते हैं। वे महेन्द्र पर्वत पर खड़े होकर अपने शरीर को निस्सीम परिधि तक बढ़ा लेते हैं और फिर दोनों भुजाओं और चरणों से उस पर्वत को दबाते हैं। पर्वत काँप उठता है और दो घड़ी तक डगमगाता रहता है। उस पर उगे वृक्षों के सारे फूल झड़ जाते हैं। उसके सारे जल स्रोत फूट पड़ते हैं। उसकी शिलायें टूट–टूटकर गिरने लगती हैं। उस पर निवास करने वाले अपदस्थ होकर चिल्लाने लगते हैं।

निष्प्रमाणं शरीरः सल्लिलंघयितुरर्णवम्।

बाहुभ्यां पीडयामास चरणाभ्यां च पर्वतम्

स चचालाचलश्चाशु मुहर्त कपिपीड़ितः।

तरूणां पुष्पिताग्राणां सर्व पुष्पमशातयत्।

हरिणा पीड्यमानेन पीड्यमानानि सर्वतः

गुहाविष्टानि सत्वानि विनेद्रुर्विकृतैः स्वरैः।

इसके उपरान्त छलांग लगाने के पहले हनुमान जी क्या क्या करते हैं, अपने शरीर को कैसे कसते हैं और फिर कैसे उड़ते हुये से समुद्र को झकझोरते उसे पार करते हैं और उस समय समुद्र में तथा

वहाँ के सारे पर्यावरण में क्या क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका अतीव जीवन्त और चित्रमय वर्णन वाल्मीकि जी ने किया है।

दुधुवे च स रोमाणि चकम्पे चानलोपमः।
ननाद च महानादं समद्रानिव तोयदः।।
बाहू संस्तम्भयामास महापरिध संनिभौ।
असंसाद कपिः कट्याम् चरणौ संचुकोच च।।
सहृत्य च भुजौ श्रीसांस्तभैव च शिरोधराम्।
तेजः सत्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान्।।
एवमुतवा तु हनमान वानरो वानरोन्तम्ः।
उत्पपताथ वेगेन वेगवान विचारयन्।
सुपवर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुंजरः।।
समुत्पतति बेगात् तु वेगात् ते नगरोहिणः।
संहृत्म ते विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः।।
तमूरूवेगोन्मथिताः सालाश्चान्ये नगोत्तमाः।
अनुजग्मुर्हनुमन्तं सेनया इव महीपतिम्।।
पिबन्निव बभौ चापि सोर्मिजालं महार्णवम्।
पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः।।

वेगशाली हनुमान ने अपने को साक्षात् गरूड़ मानते हुये बड़े वेग से ऊपर की ओर छलाँग मारी। जिस समय वे कूदे उनके वेग से पर्वत के सारे विटप उखड़ गये और अपनी सारी डालियों को समेट कर उनके साथ ही चारों ओर से वेगपूर्वक उड़ चले।

उनकी जांघों के वेग से उखड़े हुये साल और अन्य वृक्ष उनके पीछे पीछे उसी प्रकार चले जैसे राजा के पीछे उसके सैनिक चलते हैं।

उस समय महाकपि हनुमान ऐसे प्रतीत होते थे मानों सागर को उसकी तरंगों सहित पी जाना चाहते हों।

पिगे पिगाश्रमुखसस्य वृहती परिमण्डले।

बवुषी संप्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ।।

पिंगल तेजवाले वानरों में श्रेष्ठ हनुमान की दोनों गोल बड़ी बड़ी और पीले रंग की आंखें चन्द्र और सूर्य के समान प्रकाशित हो रही थीं।

इस काव्य सौष्ठव और काव्य शिल्प का मूल्यद्विगुणित हो जाता है जब हम यह स्मरण करते हैं कि रामायण चार हजार वर्ष पूर्व रची गयी। उस युग में रची गयी जब कोई भी पूर्व का काव्य या महाकाव्य रचयिता के समक्ष नहीं था, कोई पूर्व सूरी नहीं थे, पाणिनि की अष्टाध्यायी नहीं थी, मम्मट का काव्य प्रकाश नहीं था, छन्द और अलंकार शास्त्र के बड़े मानक ग्रन्थ नहीं थे। रामायण महर्षि वाल्मीकि की मौलिक रचना है। समग्र रूप से उनकी अपनी प्रतिभा से उद्भूत पुण्डरीक है। रामायण के आकार और उसकी अप्रतिम गुणवत्ता को देखकर उसे निश्चय ही अपौरुषेय कहा जायेगा।

रामायणं नाम परं तु काव्यं

सुपुण्यदं वै श्रृणुत द्विजेन्द्राः।

यस्मिन् श्रुते जन्मजरादिनाशो

भवत्यदोषः स नरोऽच्युतः स्यात्।

**

संस्कृत साहित्य में उक्ति वैचित्र्य

देववाणी संस्कृत में लिखे गये काव्य, नाटक, विज्ञान, दर्शन, ज्योतिष, गणित, कला, आख्यान, इतिहास आदि साहित्य का विश्व साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। संस्कृत भाषा की अभिव्यंजना शक्ति और उसका विपुल वैभव अन्य भाषाभाषियों को भी आकृष्ट करता रहा है। पर संस्कृत साहित्य में चमत्कारिक छन्दों और अनूठी उक्तियों का जो अक्षय भण्डार भरा है, उससे हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के रसिक कदाचित् अपरिचित हैं। उर्दू साहित्य चमत्कारिक शेअरों और उक्ति वैचित्रय के लिये विख्यात है। क्षणिक गुदगुदी और खिलखिलाहट पैदा करने वाले इस प्रकार के अनेक शेअर लोगों की ज़ुबान पर हैं।

इतनी ज़रा सी बात पै, हक़ की ज़ुबां न काटिये।
आप का नाम याद था, आपका नाम ले लिया।।
भीड़ में हर इक के हाथों में, शगुफता फूल थे।
सर मेरा ज़ख्मी बताओ, किसके पत्थर से हुआ।।

इस संदर्भ में यह कहना प्रासंगिक है कि संस्कृत साहित्य में जहाँ एक ओर मेघदूत, गीत गोविन्द, शाकुन्तल, कादम्बरी जैसे रस से ओत प्रोत अमर काव्यों का सृजन हुआ, वहीं सूक्तियों और चमत्कारिक कविताओं की रचना की भी एक परम्परा रही। इनमें कुछ कवितायें तो चमत्कारिक होने के साथ ही इतनी मर्मस्पर्शी हैं कि सीधे हृदय को छूती हैं। देखिये :–

वर्षा की निशीध है। ऐसा निविड़ अन्धकार है कि कोई भी पुरुष बाहर निकलने का दुस्साहस न करे। पर फूलों से भी कोमल, तिनके

के खटके से शंकित होने वाली निसर्गभीरु षोडसी अभिसार की ओर चली जा रही है। कोई पूँछता है, "बाले, अकेली इस घोर अन्धकार में कहां जा रही हो ?"

"प्राणाधिक प्रिय जहाँ रहते हैं।"

"अकेली जाते क्या तुम्हें भय नहीं लगता ?"

"नहीं तो, पुष्पों के तीर लिये जगद्विजयी मदन मेरे साथ सहायता के लिये उपस्थित है न"।

'क्व प्रस्थितासि करभीरु घने निशीथे ?"

"प्राणाधिको वसति यत्र जनः प्रियो मे।"

एकाकि वद कथं न विभेषि बाले ?

नन्वस्ति पुंखितशरो मदनः सहायः।।

दूसरा उदाहरण देखिये जो अपने ढंग का अनूठा है :–

कोई वृद्धा जा रही है, आयु के बोझ से उसकी कमर झुक गई है वह झुकी हुई पृथ्वी को देखती हुई चलती है। हंसोड़ युवक मिलते हैं और मज़ाक करने से नहीं चूकते। कहते हैं :–

अधः पश्यसि किं वृद्धे पतितं तव किं भुवि ?

वृद्धे ! नीचे भूमि पर क्या देख रही हो ? क्या कुछ गिर गया है?

वृद्धा उत्तर देती है जो युवक महोदय जीवन भर याद रखें।

रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्य मौक्तिकम्।।

(अरे मूर्ख नहीं जानता कि मेरा तारुण्य मौक्तिक गिर गया है।)

एक भक्तजन की सूझ देखिये। ब्रज का बिगड़ा हुआ बालक कृष्ण माखन चोरी के लिए कुख्यात है। यह भागा फिरता है। उसे छिपने के लिए स्थान चाहिये ऐसा स्थान जहां काफी अंधेरा हो, जिसे प्रकाश की किरण छूती न हो। भक्त महोदय सुझाव देते हैं :

क्षीरसारमपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम नितान्त तामसे नन्द–नन्दन कथं न निलीयसे।।

मक्खन चुरा कर यदि तुम छिपने की जगह ढूँढ रहे हो तो मेरे मानस में क्यों नहीं छिप जाते? ऐसा तमाच्छादित स्थल तुम्हें और कौन मिलेगा?

"मन" शब्द संस्कृत व्याकरण में नपुंसकलिंग शब्द है। इसका आलम्ब लेकर कवि ने क्या अनूठी उक्ति की है :

नपुंसकमिति ज्ञात्वा प्रियायै प्रेषितं मनः।
स तत्रैव रमते हता पाणिनिना वयम्।।

नपुंसक समझकर मन को मैने निशंसय प्रिया के पास भेज दिया। इस कार्य में किसी प्रकार की आशंका या वंचना का डर न था। पर यह क्या हुआ ? वह (मन) तो वहीं रमण करने लगा। अब आने का नाम ही नहीं लेता। मैं पाणिनि के द्वारा मारा गया (पाणिनि–संस्कृत के प्रख्यात वैयाकरण और अष्टाध्यायी के प्रणेता हैं।)

विदेश स्थित पति लौटे हुये संदेशवाहक से प्रियतमा का समाचार पूछता है। वह जो उत्तर देता है, वह न केवल चमत्कारपूर्ण है, अपितु विरहिणी का सजीव चित्र प्रस्तुत कर देता है।

तव विरहविधुरवाला सद्यः प्राणान् विमुक्तवती।
दुर्लभमीदृशमंगम् मत्वा न ते पुनस्ताम् जहुः।।

पहले वाक्य में वह कहता है कि तुम्हारी प्रेयसी तो तुम्हारे जाने के उपरान्त शीघ्र ही (सद्यः) प्राण छोड़ गई। पति महोदय साहस छोड़ने लगे तो संदेशवाहक ने बात पूरी की। उसके प्राणों ने यह सोंचकर कि ऐसा निवास स्थान (शरीर) दुर्लभ है, उसे नहीं छोड़ा, अर्थात् वह किसी प्रकार बस जीवित भर है। येन केन प्रकारेण शरीर

का बोझ ढोती हुई अप्रतिम सौन्दर्य वाली तन्वंगी का कितना सुन्दर चित्र है।

बिहारी के इस दोहे से आप परिचित हैं ?

सखी सिखावति मानविधि सैननि वरजति वाल।
हरुये कहु मे हिय बसत सदा बिहारी लाल।।

एक संस्कृत कवि की वाणी से यही विचार सुनिये।

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारम्यते।
मानंधत्सव धृतिं बधान, ऋजुतां दूरी कुरु प्रेयसि।
सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रति वचस्तामाह भीताननना।
नीचेः शंश, हृदि स्थितो हि ननु मेप्राणेश्वरः श्रोष्यति।।

सखी प्रणय व्यापार की प्रैक्टिल दीक्षा (टिप्स) देती है। कहती है मुग्धे तू मूर्ख क्यों बन रही है ? इतनी सरलता ठीक नहीं। थोड़ा मान करना सीख। उनको कुछ दूर पर रखो। ललचाओ, तरसाओं आदि आदि। पर प्रेम में सब कुछ खोई हुई उस मुग्धा को ऐसा लगता है मानो उसे षडयन्त्र सिखाया जा रहा है। वह डरी हुई सी कहती है। 'धीरे बोलो, हृदय में बैठे हुए प्राणेश सुन लेंगे।' यह गवेषणा का रोचक विषय होगा कि बिहारी ने इस संस्कृत कवि से अपने दोहे का विचार प्राप्त किया था अथवा संस्कृत कवि ने बिहारी से। संभव है कि यह उक्ति स्वतन्त्र रूप से दोनों के मस्तिष्क में आयी हो।

शिशिर ऋतु है। बर्फीली हवा सारे जड़ चेतन जगत को कँपा रही है। ऐसे में अपने प्रिय के सान्निध्य की उष्णता के लिये पर्युत्सक होना स्वाभाविक है। विरक्त जन भी इस ऋतु में एकाकीपन का अनुभव करते हैं और किसी के सहवास की कामना रखते हैं। प्रोषित–पतिका वियोगिनी की मदन पीड़ा तीव्रतर हो जाती है। कवि इसका कितना विचित्र वर्णन करता है।

शिशिर–सीकर–वाहिनि मारुते।
चरति शीतभयादिव सत्वरम्।।
मनसिजः प्रविवेश वियोगिनी
हृदयमाहितशोकहुताशनम् ।।

जब शिशिर की बर्फीली हवा चली तो शीघ्र ही शीत के भय से मदनेश वियोगिनी के हृदय में जा छिपे, जहाँ शोक की अग्नि जल रही थी। शिशिर पर एक दूसरी सूक्ति देखिये जो अपने उक्ति वैचित्र्य के लिये अद्वितीय है :

अग्निकोण गतो भानुः शीतात् संकुचितं दिनम।
वैश्वानरो नरक्रोड़े राजनन्यस्य का कथा।।

घोर शीत से सारा जगत पीड़ित है। वह ताप के लिये सूर्य का, दिन का, अग्नि का, आश्रय ढूंढता है। पर ताप और ऊष्णता के ये महारथी भी शीत से पराभूत हुये जान पड़ते हैं और स्वयं ताप ढूंढते फिरते हैं। सूर्य गर्मी प्राप्त करने के लिए अग्निकोण में चला गया है, दिन शीत के कारण सिकुड़ गया है और अग्नि मनुष्यों के बीच जा छिपी है। इतर जनों की दशा का क्या कहना ? शिशिर ऋतु में दक्षिणायन गये हुए सूर्य, अल्प घंटों वाले जाड़े के दिनों और अलाव को घेर कर बैठे हुये शीतार्तजनों का कैसा चमत्कारिक वर्णन है।

किसी भ्रमरवृत्ति वाले प्रिय की खण्डिता प्रेयसी परिताप और ईर्ष्या से घुल रही है। वह उसे सन्देश भेजती है।

महिला सहस्रभरिते तव हृदये सुभग सा अयान्ती।
अनुदिनमनतकर्मा अंगंतनुमपि तनूकरोति।।

सन्देशवाहक कहता है, हे सुभग। जब उसने देखा कि सहस्रों महिलाओं से भरे हुये तुम्हारे हृदय में वह नहीं समा रही है तो सारे

काम छोड़ उसने अपने दुबले शरीर को और दुबला करना प्रारम्भ कर दिया। कितनी शिष्ट भर्त्सना है और साथ ही कितनी तीक्ष्ण !

कन्दुक क्रीडा में रत एक सुन्दरी का चमत्कृति पूर्ण वर्णन सुनिये। कमलाक्षी, पीनपयोधरा कन्दुक से खेल रही है। वह उसे बार बार हथेली से मारती है और गेंद ऊपर उछलता है। इस आयास में बालों में लगाई गई कमलकलिका भूमि पर गिर जाती है और उसके पैरों के पास आ पड़ती है। कवि उत्प्रेक्षा करता है :

पयोधराकारधरो हि कन्दुकः करेण रोषादभिहन्यते मुहुः।
इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं स्त्रियः प्रसादाय पपात् पादयोः।।

कन्दुक सुन्दरी के पयोधरों की नकल कर रहा है, इस कारण वह उसे रोष से बार बार हाथ से मारती है। कन्दुक की यह दुर्दशा देख केश में लगा हुआ कमल डर गया, क्योंकि वह उसके नयनों की आकृति की समता करता था और तत्क्षण सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिए उसके पैरों पर गिर पड़ा।

अतिशयोक्ति के अनेक उदाहरण आपके समक्ष आये होंगे। उर्दू शायरी में तो अतिशयोक्तियों का कहना ही क्या। स्वप्न में तस्वीर का चुम्बन करने से नायिका के गाल पीले पड़ जाते हैं। बिहारी की नायिका श्वास की समीरण को बर्दाश्त नहीं कर पाती और उसी से झकझोर उठती है। पर अतिशयोक्ति का एक उदाहरण मुझे मिला जिस पर बिहारी भी शरमा जायें।

यथा यथा ते सुयशो विवर्धते सितां त्रिलोकीमिव कुर्तमुद्यतम्।
तथा तथा में ह्रदयम् विदूयते प्रियालकालीधवलत्व शंकया।।

एक कवि महोदय किसी राज–सभा में पहुंचे और राजा की प्रशंसा में छन्द पढ़ने के लिये उठे। उनके छन्द के प्रथम चरण और द्वितीयार्ध को सुनकर सभासद दंग रह गये क्योंकि उन्होंने जो छन्द पढ़ा, उसका आशय था, राजन्, जैसे जैसे तीनों लोकों को शुभ्र

करता हुआ आपका सुयश फैल रहा है वैसे वैसे मेरा हृदय दुखी हो रहा है। आश्चर्यचकित सभा को हास्यनद में डुबोते हुये कवि ने छन्द पूरा किया।

प्रियालकालीधवलत्वशंकया। अर्थात् अपनी प्रिया की अलकों के श्वेत हो जाने के डर से। कौन कह सकता है कि उसकी आशंका बनावटी है। जब राजा का यश सारे जगत को ही धवल कर रहा है तो कवि की प्रेयसी के अलक श्वेत हो जाने में क्या संदेह है ?

लक्ष्मी की चंचला वृत्ति को लेकर अनेक कवियों ने अनेक उत्प्रेक्षायें की हैं। पर एक स्पष्टीकरण यह देखिये जो अनूठा है। कमला क्यों इतनी चंचला है। यह उनका दोष नहीं। दोष तो उनके पिता सागरराज का है जिन्होंने अपनी युवापुत्री का विवाह पुरातन पुरुष के साथ कर दिया। ऐसे वृद्ध पुरुष की पत्नी में चंचलता स्वाभाविक है।

यद्वदति चपलेत्यपवादं नैव दूषणम् कमलायाः।
दूषणं जलनिधेर्हि भवेत् यत्पुराणपुरुषाय ददौ ताम्।।

विरहणी बाला प्रिय के वियोग में जल रही है। वह अंगों में ताप का अनुभव करती है। हृदय में तीव्रतर दाह है। नयनों से जैसे अश्रु का प्रपात फूट पड़ा है। अविरल अश्रुधारा उसके वक्ष को भिगोती रहती है। इस पर उत्प्रेक्षा देखिये :

अंगानि मे दहतु कान्त–वियोग–वह्निः
संरक्ष्यतां प्रियतमो हृदि वर्तते यः।
इत्याशया शशिमुखी गलदश्रुवारि
धाराभिरुष्णभिरभिसिंचति हृत्प्रदेशम्।।

मेरे शरीर में लगी हुई प्रिय के वियोग की अग्नि सारे अंगों को भले ही जला दे, पर हृदय में बैठे हुये प्रियतम को तो बचाना ही है।

वह इस अग्नि के ताप से जल न जाय, इस उद्देश्य से वह अविरल हृदय को सींच रही है। कितनी मार्मिक तथा वैचित्र्यपूर्ण उक्ति है।

इस प्रकार की कविताओं का संस्कृत साहित्य में भण्डार भरा पड़ा है और इस छोटे से लेख की परिधि में उनको इंगित मात्र करने के अतिरिक्त कदाचित् और कुछ नहीं किया जा सकता है। पर मैं एक और छन्द उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता जो सौन्दर्य वैचित्र्य में अपनी समता नहीं रखता।

नेयं ते मुखमण्डलप्रतिकृतिश्छाया न हारोद्भवा।
वक्षोजौ प्रतिबिम्बितौ न सलिले जानेहि तथ्यंप्रिये।
अप्राप्याननसौभगं तव शशी मुक्तांचितैर्दामभिः
कण्ठे हेमघटद्वयं परिदधत् पानीयमध्यं गतः।।

सुन्दरी सरोवर के जल में स्नान के लिये खड़ी है। उसके मुख मण्डल, मुक्तावली और उरोजों का प्रतिबिम्ब जल में पड़ रहा है। कवि कहता है, 'हे प्रिये जल में यह तुम्हारे मुख मण्डल की प्रतिकृति नहीं है, न यह कंठहार की छाया है और न यह तुम्हारे उरोजों का प्रतिबिम्ब है। यह तो चन्द्रमा है जो तुम्हारे मुख के सौन्दर्य को न पहुँच कर लज्जा से गले में मोती के हारों द्वारा दो हेमघट बाँधकर पानी में डूब मरा है। अपन्हुति का कैसा उत्कृष्ट उदाहरण है और कितना चित्रमय !

**

विष्णु पुराण

पुराण साहित्य भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। सनातन धर्म का भक्ति प्रधान, मूर्तिपरक, तीर्थपरायण, व्रत, उपासना, दान–संकुल, पापपुण्य भावनामूलक जो स्वरूप हिन्दू समाज में आज व्यापक रूप से प्रसरित और प्रचलित है, उसका मूलाधार पुराण ही हैं। श्रुतियों में प्रतिपादित ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड सामान्य जनों के लिए दुरूह था। अतः व्यासप्रभृति महर्षियों ने आख्यानों और उपाख्यानों तथा रोचक कथा प्रसंगों द्वारा वह ज्ञानराशि लोक कल्याण के लिए पुराणों के माध्यम से प्रस्तुत की। बौद्ध धर्म के ह्रास काल में जनता का आकर्षण पुराणोक्त धर्म की ओर बढ़ गया। पुराणोक्त धर्म सभी वर्णों एवं जातियों के लिए आचरणीय होने के कारण एक प्रकार से भारत का राष्ट्रीय धर्म सा हो गया। आज भी प्रत्येक हिन्दू के घर में किसी भी व्रत अनुष्ठान या संस्कार के संकल्प वाक्य में "श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फलप्रात्यर्थ" इस प्रस्तावना का उच्चारण होता है।

महत्व में पुराणों का स्थान श्रुतियों और स्मृतियों के बराबर माना जाता रहा है। श्रुति और स्मृति को विद्वान के दो नेत्र और पुराण को उसका हृदय कहा जाता है।

श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धःकाणः स्यादेकया बिना"
पुराणहीनात् हृत्छून्यात् काणान्धावपि तौ वरौ।
श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मः पुराणे परिगीयते।।
यस्य धर्मेऽस्ति जिज्ञासा यस्य पापाद्भयं महत्।
श्रोतव्यानि पुराणानि धर्ममूलानि तेन वै।।

श्रुति और स्मृति विद्वान के नेत्र और पुराण उसका हृदय है।

श्रुति और स्मृति ज्ञान से रहित व्यक्ति अन्धा और इसमें से एक से हीन काणा है। किन्तु पुराण उसका हृदय है और पुराणों का ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति हृदय हीन अर्थात् मृतकल्प है। श्रुतियों और स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म ही पुराणों द्वारा गाया गया है। धर्म की जिज्ञासा रखने वाले व्यक्ति के लिए पुराणों का श्रवण और पारायण आवश्यक है।

अपौरूषेय वेद धर्म के मूल और निःशेष ज्ञान राशि के भंडार हैं। किन्तु वेदों का अध्ययन सबके लिए सुसाध्य नहीं है। वेदोक्त धर्म और ज्ञान को पुराण सुबोध आख्यानों और रोचक कथाओं द्वारा सर्वसाधारण के लिए सुलभ करते हैं। भक्ति, ज्ञान, सदाचार और कर्तव्याकर्तव्य का निरूपण करने वाले शतशः आख्यान लोककल्याण निमित्त और सामान्य जनों के बोध हेतु पुराणों में गुम्फित किये गये हैं।

एष साधारणः पन्थाः साक्षात् कैवल्यसिद्धिः।

नारदपुराण में कहा ही गया है।

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेष्वेव सर्वदा।

वेद पुराणों में प्रतिष्ठित हैं। इसमें संशय नहीं है। पुराणों को पंचम वेद नाम से अभिहित किया गया है और कहा गया है कि सर्वज्ञ प्रजापति ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से पंचम वेद स्वरूप पुराणों की सृष्टि की।

इतिहासपुराणानि पंचमम् वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः।।

छान्दोग्य उपनिषद में भी :

इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्। ऐसा कहा गया है।

पद्मपुराण में पुराणविद को साङ्गोपनिषद चारों वेदों के ज्ञाता से भी वरीयान बतलाया गया है।

यो विद्यात् चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद् विचक्षणः।।

अष्टादश पुराणों में विष्णु पुराण का एक विशिष्ट स्थान है। विष्णु पुराण विष्णु उपासना और वैष्णव दर्शन की आधारशिला स्वरूप है। अन्य अनेक पुराणों की अपेक्षा लघ्वाकार होते हुये भी यह विशिष्ट रूप से समादृत है।

आख्यानैः उपाख्यानैः गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।

पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः।।

इसे पुराण संहिता की संज्ञा दी गयी है। सुविख्यात और हिन्दू समाज में अतिशय लोकप्रिय श्रीमद्भागवत् पुराण विष्णुपुराण का ही विस्तार है। श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित ध्रुव, प्रह्लाद, जड़ भरत आदि के उपाख्यान विष्णु पुराण में वर्णित तद्विषयक आख्यानों पर ही आधारित हैं। इसी प्रकार भागवतपुराण के श्रृष्टि वर्णन, ज्योतिश्चक्रवर्णन, कलिधर्म निरूपण, सूर्यवंश और चन्द्रवंशों के वर्णन का आधार भी विष्णु पुराण की गाथायें हैं। श्रीमद्भागवत पुराण का दशमस्कन्ध सर्वातिशायी माना जाता है। इस स्कन्ध में वर्णित भगवान श्रीकृष्ण का लीला चरित अतिशय सरस और मनोहारी है तथा भक्तजनों का तो सर्वस्य है। इस रसभरभरित सुधास्रावी प्रसंग का मूल विष्णु पुराण के पंचम अंश में है, जहाँ विस्तार से श्रीकृष्ण चरित का ही गान किया गया है।

विष्णु पुराण महात्मा व्यास के पितृपाद पराशर जी की कृति है। पुराण के प्रथम अध्याय में यह उल्लेख मिलता है कि जब पराशर ऋषि के पिता शक्ति राक्षसों द्वारा मार डाले गये तो पराशर जी ने प्रतिशोधरूप राक्षसों के विनाश के लिये 'रक्षोघ्नसत्र' प्रारंभ किया। हजारों राक्षस गिर–गिर कर उसमें स्वाहा होने लगे। राक्षसों के पिता पुलस्त्य बहुत चिन्तित हुये। वे वशिष्ट जी के साथ पराशर के पास गये और समझा बुझाकर उनका क्रोध शान्त किया। पुलस्त्य ऋषि ने तत्पश्चात् प्रसन्न होकर पराशर को विष्णु पुराण के रचयिता होने का आशीर्वाद दिया।

पुराणसंहिताकर्ता भवान् वत्स भविष्यति।

कालान्तर में मैत्रेय द्वारा सृष्टि आदि के विषय में प्रश्न पूछने पर पराशर जी को स्मरण हो आया और उन्होंने मैत्रेय को यह पुराण सुनाया।

पुराणसंहितां सम्यक् तां निवोध यथातथम्।

पराशर ऋषि और मैत्रेय का यह संवाद ही विष्णु पुराण है। पराशर जैसे पुरातन ऋषि की कृति होने से इस पुराण की प्राचीनता स्वतः प्रमाणित है।

नारद पुराण और मत्स्य पुराण के अनुसार विष्णु पुराण की श्लोक संख्या तेइस हज़ार है। किन्तु वर्तमान में उपलब्ध विष्णु पुराण में केवल छः हज़ार श्लोक प्राप्त होते हैं। उपपुराण, विष्णु धर्मोत्तर के श्लोकों को भी जोड़ दिया जाये तो अवश्य तेइस हज़ार संख्या हो जायेगी।

विष्णु पुराण में कुल छः अंश अथवा खंड हैं। प्रत्येक अंश में अनेक अध्याय हैं। जैसे प्रथम अंश में 22, द्वितीय में 16, तृतीय में 18 आदि। पूरे ग्रन्थ में कुल 126 अध्याय हैं। इसका चतुर्थ अंश गद्यात्मक है।

पुराण के प्रथम अंश में सृष्टि का सविस्तार वर्णन है। विष्णु को सृष्टि का कर्ता और बीज कहा गया है और विस्तार से उनकी महिमा और शक्ति का वर्णन किया गया है।

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत् तत्रैव च स्थितम्।
स्थितिसंयमकर्ताऽसौ जगतोऽस्य जगच्च सः।।

पराशर जी कहते हैं कि सृष्टि के आरंभ में न तो दिन था, न रात्रि थी, न भूमि थी, न आकाश था, न तम था, न प्रकाश था केवल एक प्रधान ब्रह्म ही विद्यमान था।

नाहो रात्रिर्न नभो न भूमिर्नासीत् तमो ज्योतिरभूच्चनान्यत्।
श्रोत्रादिवुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्।।
पुनः स एव सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोऽव्ययः।
सर्गादिकं तु तस्यैव भूतस्थमुपकारकम्।।

विष्णु पुराण के द्वितीय अंश में मुख्यतः भूगोल और खगोल वर्णित हैं।

तृतीय अंश में मन्वन्तर, वेदशाखाओं, वर्णाश्रम धर्म और श्राद्धों का निरूपण किया गया है। मैत्रेय के पूँछने पर चतुर्थ अंश में पराशर जी ने राजाओं की वंशावली और उनकी गाथायें सुनाई हैं। इस पुराण का चतुर्थ अंश गद्यात्मक है और चन्द्रवंशी तथा सूर्यवंशी राजाओं से लेकर कलियुग तक के राजाओं का विवरण देता है। प्रथम पाँच अध्यायों में ब्रह्मा से सूर्यवंश की उत्पत्ति, वैवस्वतपुत्रों शर्याति, इक्ष्वाकु, उनके पुत्रों विकुक्षि वंश काकुत्स्थ, मान्धाता, सगर, सगर पुत्रों, ययाति, राम और उनके भाइयों के वंशजों, मिथिला के राजाओं, जनक के जन्म, सीता की उत्पत्ति आदि का वर्णन है। षष्ठ से दशम तक अध्यायों में चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन हैं जिसमें सोम की उत्पत्ति, बुध का जन्म, इला से बुध के विवाह की कथा, पुरूरवा और उर्वशी की गाथा, जमदग्नि और विश्वामित्र का जन्म, परशुराम चरित और नहुष चरित सम्मिलित है। 11 से लेकर 85 तक के अध्यायों में यदुवंशियों का विस्तृत वर्णन है। शिशुपाल वध की कथा भी इस भाग में वर्णित है।

मगध राजाओं का वर्णन करते हुये विष्णु पुराण कहता है कि राजा परीक्षित के जन्म के 1085 वर्ष बाद नन्द सिंहासनारूढ़ हुआ। नन्द का काल ई.पू. 416 के लगभग माना जाता है और परीक्षित अर्जुन के पौत्र है। अतः इस गणना के अनुसार महाभारत का युद्ध लगभग 1500 ई.पू. में हुआ होगा।

विष्णु पुराण के पंचम अंश में 38 अध्याय हैं और इनमें केवल श्रीकृष्ण का चरित गाया गया है। कृष्ण को विष्णु का अंशावतार कहा गया है। जरासंध के युद्ध और कालयवन की कथाओं सहित श्रीकृष्ण के अनेक आख्यान, उपाख्यान वर्णित किये गये हैं। अंश के अन्त में यादवों के विनाश और एक आखेटक द्वारा भ्रमवश संचालित वाण से श्रीकृष्ण की मृत्यु का वर्णन है।

पुराण के छठें और अन्तिम अंश में केवल आठ अध्याय हैं। इनमें प्रलय तथा जगत के विनाश का वृत्त दिया गया है। अन्तिम तीन अध्यायों में खाण्डिक्य और केशिध्वज के आख्यान तथा मोक्ष प्राप्ति हेतु विष्णु की शरणागति का उल्लेख है। इसमें यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आदि अष्टांगयोग का भी विवरण है। योग के स्वरूप का वर्णन करते हुये केशिध्वज कहते हैं।

योगस्वरूपं खाण्डिक्य श्रूयतां गदतो, मम।
यत्रस्थितो न च्यवते प्राप्य ब्रह्मलयं मुनिः।।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बंधाय विषयासंगि मुक्त्यै निर्विषयं मनः।।
विषयेभ्यः समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः।
चिन्तयेत् मुक्तये तेन व्रह्मभूतं परेश्वरम्।।

विष्णु पुराण में पुराण के सभी पाँच लक्षण पाये जाते हैं।

सर्गः प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।।

विष्णु पुराण में सृष्टि, प्रलय, वंश मन्वन्तर आदि सभी का पूर्ण परिपाक हुआ है।

सब कुछ कह चुकने के उपरान्त षष्ठ अंश के अन्तिम अध्याय में पराशर जी कहते हैं, मैत्रेय।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं कृत्स्नं मयाग्रे तव कीर्तितम्।।
अत्र देवास्तथा दैत्या गंधर्वोरगराक्षसाः।
यक्ष विद्याधरास्सिद्धाः कथ्यन्ते अपारसस्तथा।।
मुनयो भावितात्मानः कथ्यन्ते तपसान्विताः।
चातुर्वर्ण्यं तथा पुंसां विशिष्टचरितानिं च।।
पुण्याः प्रदेशाः मेदिन्याः पुण्या नद्योऽथ सागराः।
पर्वताश्च मुहापुण्याश्चरितानि च धीमताम्।।
वर्णधर्मादयो धर्मा वेदशास्त्राणि कृत्स्नशः।
येषां संस्मरणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

यह सब मैंने तुम्हें सुनाया है।

निस्संदेह विष्णु पुराण भक्ति और ज्ञान का महासागर है और प्रत्येक व्यक्ति के अवगाहन योग्य है।

विष्णु पुराण की अनेक टीकायें संस्कृत में हुई हैं जिनमें श्रीधरी, विष्णुचित्तीय और रत्नगर्भ टीकायें बहुत प्रसिद्ध हैं। अंग्रेजी और जर्मन भाषाओं में भी इस पुराण के अनुवाद किये गये हैं। हिन्दी में भी विष्णु पुराण के अनुवाद उपलब्ध हैं।

**

कालिदास का विख्यात महाकाव्य कुमार संभवम्

पर्वतपुत्री पार्वती के तप और कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा

महाकवि कालिदास की प्रमाणपुष्ट और निर्विवाद सात कृतियाँ मानी जाती हैं। मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् और अभिज्ञानशाकुन्तलम् ये नाटक त्रय और ऋतु संहारम्, मेघदूतम्, कुमार संभवम् और रघुवंशम् ये चार काव्य। कालिदास के दो महाकाव्यों में से अन्यतम कुमार संभवम् साहित्य गगन में एक प्रखरदीप्त नक्षत्र की भाँति भासमान है। यह आठ सर्गों का काव्य है और जैसा कि इसके नाम से ही ध्वनित होता है कि यह जगत पिता महादेव और जगज्जननी पार्वती से सम्भूत कुमार कार्तिकेय के जन्म के वृतान्त का काव्य है। महाकाव्य के पहले सर्ग में नगाधिराज हिमालय का अपूर्व चित्रमय वर्णन है। हिमाद्रि का यह रस–भर–भरित वर्णन काव्य रसिकों का कण्ठहार हो गया है। पुरातन काल से लेकर आज तक अनेकानेक कवियों ने हिमराज के सौन्दर्य का वर्णन किया है, किन्तु कालिदास का हिमालय वर्णन सर्वथा अभिनव और मनोहारी है। काव्य के प्रारम्भ में प्रथम श्लोक में ही कवि ने एक भौगोलिक तथ्य परक वर्णन देते हुए भी एक अस्पृष्टपूर्व उपमा की अवतारणा की है –

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्याः इव मानदण्डः।।

उत्तर दिशा में हिमालय नामक देवात्मा नगाधिराज है जो पूरब और पश्चिम दिशाओं में सागर को स्पर्श करता हुआ पृथ्वी के मानदण्ड के रूप में स्थित है।

हिमालय केवल देवों की भूमि नहीं है। वह सभी महाशैलों का वत्स है, अनन्त रत्नों का आकर है, सिद्धों की तपोभूमि है, मत्त गजों का अभयारण्य है, विद्याधर सुन्दरियों और किन्नरियों की केलिस्थली है। पूर्णोपमा में बांधी गयी इस कल्पना को देखिये :–

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।

भास्वन्ति रत्नानि महोषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुर्धरित्रीम्।।

सारे पर्वतों ने हिमालय को अपना पुत्र मानकर उसे जाज्वल्यमान रत्नों और औषधियों से भर दिया।

पुनः रस से सराबोर यह श्रृंगार चित्र –

यत्रांशुकक्षेपविलज्जितानाम् यदृच्छया किंपुरुषागंनानाम्।

दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः तिरस्करिण्योजलदा भवन्ति।।

हिमालय की गुफाओं में प्रियतम के साथ बिहार करती हुयी किन्नरियों के वस्त्र केलिकलाओं में ढीले होकर इधर उधर जा गिरते हैं। तब संयोग वश मेघ गण आकर गुफाओं के द्वार पर ठहर जाते हैं और उन्हें ढककर किन्नरियों की लज्जा की रक्षा करते हैं।

हिमालयात्मजा लावण्यमूर्ति पार्वती इसी मनोहारी परिवेश में प्रकृति की गोद में पलती है। वह चन्द्रलेखा सी प्रतिदिन बढ़ रही है। उसके लावण्यमय अंगों में एक नई ज्योत्स्ना सी है–

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।

पुपोष लावण्यमयान् विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि।।

हिमाद्रि के ही एक अंचल में कैलाश शिखर पर देवाधिदेव शिव निवास करते हैं।

महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में अजेय तारकासुर नामक राक्षस से अतिशय पीड़ित देवगण अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मा के पास जाकर उनकी स्तुति करते हैं और ब्रह्मा उन्हें यह परामर्श देते हैं कि महादेव

शंकर से उत्पन्न कुमार ही तारकासुर का वध कर सकता है। अतएव आप कामदेव की सहायता से शिव के पुत्र की उत्पत्ति का यत्न करें। तृतीय सर्ग में देवराज इन्द्र का आदेश मानकर मदन अपने सखा वसन्त के साथ समाधि में बैठे हुए शिव का व्रत भंग करने और उनमें कामेच्छा जागृत करने का असफल प्रयास करता है। महादेव शंकर क्रुद्ध होकर अपना तृतीय नेत्र खोलते हैं और मदन एक क्षण में भस्म हो जाता है –

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावत् गिरःखे मरूतां चरन्ति।
तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार।।

जब तक देवगण के मुख से ये शब्द निकलें 'भगवन् क्रोध को रोकियें, रोकिये' तब तक महादेव के तृतीय नेत्र से निकली अग्नि ने कामदेव को भस्मावशेष कर दिया।

कामदेव के इस प्रकार भस्म हो जाने पर उसकी पत्नी रति करुण विलाप करती है। कुमार सभव के चतुर्थ सर्ग में विस्तार से वर्णित रति– विलाप अतिशय करुण और मर्मस्पर्शी है। कालिदास की काव्यप्रतिभा यहाँ अपने चरम उत्कर्ष पर दिखायी पड़ती है। रघुवंश के अजविलाप की भाँति कुमार सम्भव का रति विलाप इस महाकाव्य का कोमलातिकोमल अंश है–

अथ सा पुरनेव विह्वला वसुधालिंगनधूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम्।।
नु मां त्वदधीनजीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्न सौहृदः।
नलिनीक्षतसेतुबन्धनो जलसंघात इवासि विद्धतः।।

पति के साथ अग्नि चिता पर चढ़ने के लिए उद्यत रति को एक आकाशवाणी रोकती है और यह आश्वासन देती है कि पति कामदेव के साथ पुनः तुम्हारा मिलन होगा।

कुमार सम्भव का पाँचवा सर्ग अत्यन्त रमणीय है और पूरे महाकाव्य के हृत्प्रदेश की भाँति है। इस सर्ग में पार्वती की तपश्चर्या और शिव–प्राप्ति फलागम का विस्तार से वर्णन किया गया है। पिनाकी द्वारा मदन को जलता हुआ देखकर पार्वती अपने रूप सौन्दर्य को निष्फल समझती हुई उसे धिक्कारती है और शिव को पति रूप में प्राप्त करने हेतु घोर तप प्रारम्भ करती हैं–

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।।

कोमलांगी पार्वती की तपश्चर्या बड़े–बड़े ऋषियों को भी दहला देती है। अन्ततः मृगचर्म और पलाश दंड धारी ब्रह्मचारी का वेश धारण कर साक्षात् ब्रह्मचर्याश्रम स्वरूप महादेव शिव उनकी परीक्षा के लिए स्वयं आते हैं –

अथाजिनाषाढ़धरः प्रगल्भवाक्ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा।।

ब्रह्मचारी वेशधारी शिव पार्वती को अनेक तर्कों से समझाने की कोशिश करते हैं और शंकर के भयानक अमंगल रूप की ओर भी पार्वती का ध्यान आकर्षित करते हैं। किन्तु पार्वती की भक्ति अविचल और अविकम्प है। अन्त में उससे प्रसन्न हो शिव उन्हें पत्नी के रूप में स्वीकार करते हैं। महाकवि ने इस कोमलातिकोमल प्रसंग को बड़ी सरसता और कोमलता से अभिव्यक्त किया है –

तं वीक्ष्य वेपधुमती सरसांगयष्टिः
र्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुदवहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।।

तपस्विनी पार्वती की परीक्षा लेने आये ब्रह्मचारी ने जब अपना वास्तविक रूप प्रकट किया तो अपने अभीष्ट देव को सहसा सामने

खड़ा पाकर पार्वती काँपने लगी; उनकी देह पसीने से तर हो गयी; आगे बढ़ने के लिये उठे पग एकाएक रूक गये। वह न तो आगे बढ़ पायी और न रूक पायीं, मानों कोई प्रवहमान सरिता अपने मार्ग में किसी शिलाखण्ड के आ जाने से अवरुद्ध हो गयी हो।

दूसरी ओर चन्द्रमौलि शिव जी बोले हे सुन्दरी। आज से मैं घोर तपस्या द्वारा क्रीत तुम्हारा दास हो गया हूँ। शिव जी के ऐसा कहने पर पार्वती की तपस्या की सारी व्यथा समाप्त हो गयी। सच है फलप्राप्ति से क्लेश समाप्त होकर नई स्फूर्ति देता है।

अद्य प्रभृत्यवनतांगि तवास्मि दासः।
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।।
अन्हाय सा नियमजं श्रममुत्ससर्ज।
क्लेशः फलेन हिपुनर्नवतां विधत्ते।।

छठे सर्ग में सप्तर्षि गण पार्वती के पिता हिमालय के पास जाकर शिव के लिए पार्वती की याचना करते हैं। सप्तम सर्ग में उमा और शिव का विवाह सम्पन्न होता है। आठवें अन्तिम सर्ग में कालिदास ने देव दम्पत्ति की विवाहोत्तर विलासलीला का वर्णन किया है। संयोग श्रृंगार यहाँ अपनी चरम सीमा पर पहुँचा है। महाकवि कालिदास ने इन्हीं आठ सर्गों की रचना की थी। कालान्तर में किसी अज्ञातनामा कवि ने अन्य 11 सर्गों की रचना करके कुमार जन्म की कथा को समाप्त किया।

प्रकृति वर्णन में और रस परिपाक में—चाहे वह करुण रस हो अथवा श्रृंगार रस, कुमार संभव काव्य रचना के उच्चतमशिखर पर प्रतिष्ठित है। प्रथम सर्ग में यौवन का आरोहण करती हुई पार्वती और पांचवें सर्ग में तपस्विनी पार्वती के रूप—चित्र अतिशय मनोहारी हैं। प्रत्येक श्लोक से निर्झर रस प्रवाहित होता है और प्रत्येक श्लोक एक अभिनव चित्र लेकर उपस्थित होता है।

लावण्य मूर्ति सर्वांगसुन्दरी पार्वती पर यह कल्पना देखिये –

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयतात् एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।।

विश्व का सृजन करने वाले ब्रह्मा को जब समग्र सुन्दरता को एक ही स्थान पर देखने की इच्छा हुई तो उन्होंने उपमाओं में प्रयुक्त होने वाली सारी सामग्री को स्त्री शरीर में यथास्थान रखकर पार्वती की रचना कर दी।

जब यौवन का आगमन होता है, बालिका पार्वती की रूपकला प्रस्फुटित हो जाती है। इस का अतीव चित्रमय और विशद वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। यौवन के आने पर पार्वती का शरीर सभी ओर से ऐसा शोभित हुआ मानो कोई चित्र तूलिका से खोल दिया गया हो या कोई कमल सूर्य की किरणों से खुल गया हो।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।

बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन।।

उपमा सम्राट कालिदास ने कहाँ कहाँ से उपमायें संजोयी हैं। उनके हाथों में उपमा अलंकार एक अपूर्व तेजस्विता, शक्तिवत्ता, और प्रखरता को प्राप्त हुआ है।

यौवन के आगमन पर महाकवि कालिदास की यह विचित्र कल्पना देखिये –

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारूवभारबाला।

आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्।।

पतली कटि वाली और सुन्दर त्रिवली वाली पार्वती को देख कर ऐसा लगता है कि यौवन ने कामदेव जी के चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बना दी हैं।

और पुनः युवती पार्वती के वक्षोजों का यह वर्णन –

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम्।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमयलभ्यम्।।

एक दूसरे से टकराते हुये पार्वती के दोनों गोरे स्तन इतने बढ़ गये कि उनके बीच में मृणाल सूत्र भी नहीं घुस सकता था।

अष्टम सर्ग में श्रृंगार रस बहुत प्रगाढ़ हो गया है। कुछ विद्वान इस श्रृंगार योजना में मर्यादा उल्लंघन का दोष देखते हैं। नवविवाहित दम्पती की केलि लीलाओं के कुछ दृश्य अष्टम सर्ग में इन श्लोकों में देखें :–

नाभिदेशं निहितः सकम्पया शंकरस्य रूरुधे तया करः।
तदुकूलमथ चाभवत् स्वयं दूरम् उच्छ्‌वसितनीविबन्धम्।।

जब शिव ने पार्वती की नाभि वाले भाग पर हाथ रखा तो वह काँप उठी। उसने शिवजी का हाथ रोक दिया। किन्तु उसकी नीवी की गाँठ ढीली हो गयी और साड़ी स्वयं खुल गयी।

दर्पणे च परिभोगदर्शिनी पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः।
प्रेक्ष्य बिम्वमुपबिम्वमात्मनः कानि कानि न चकार लज्जया।।

रात की परिभुक्ता पार्वती प्रातः दर्पण में अपना मुख देखने लगी तो उसी समय प्रणयी महादेव पीछे आकर बैठ गये। जब पार्वती ने उनका प्रतिबिम्ब अपने उसी दर्पण में देखा तो वह लज्जा से गड़ गयी।

महाकवि कालिदास की कृतियों में सर्वत्र अविस्मरणीय सूक्तियाँ माला में रत्नवत गुम्फित हैं। कुमार संभव में भी सर्वत्र ये सूक्तियाँ रत्नों की भाँति दीप्तिमान हैं। जैसे :–

न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।।

धर्म में पारंगत जनों की आयु नहीं देखी जाती।

शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्।।

शरीर ही धर्म चर्या का प्रथम साधन है।

न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हितत्।।

रत्न किसी को खोजता नहीं फिरता। उसे ही लोग ढूँढ़ते फिरते हैं।

कविकुलगुरु कालिदास के इस महाकाव्य का सम्यक् विवेचन और आकलन दुस्साध्य कार्य है। उन्हीं की शब्दावली का प्रयोग करते हुये मैं यहीं कहूँगा।

क्व कालिदास कतृयः क्क चाल्पविषया मतिः।

तितीर्षुः दुस्तरं मोहात् उडुपेनास्मि सागरम्।।

**

शाकुन्तलम् का अग्रज विक्रमोर्वशीयम्

हम संस्कृत साहित्य के जिस गौरवग्रन्थ की चर्चा करने जा रहे हैं, वह है कवि कुलगुरु महाकवि कालिदास के विश्वविश्रुत नाटककुल–निकष अभिज्ञानशाकुन्तल का अग्रज विक्रमोर्वशीयम् नाम त्रोटक। संस्कृत साहित्य में रूपक के जो दश भेद बताये गये हैं, उनमें त्रोटक भी एक रूपक विधा है। कालिदास की विलक्षण नाट्य–प्रतिभा जो कालान्तर में अभिज्ञानशाकुन्तल में परिपक्व होकर पूर्ण विकास को प्राप्त हुई, उसी का द्वितीय पुष्प था, विक्रमोर्वशीयम्। यह नाटक प्रतिष्ठानाधिपति राजर्षि पुरूरवा और नारायणोरूसंभवा देवांगना उर्वशी की प्रणय कथा पर आधारित है। पुरूरवा और उर्वशी का आख्यान प्रथमतः ऋग्वेद में मिलता है। वाजसनेयक अरण्यक और विविध पुराणों में भी पुरूरवा और उर्वशी का कथानक विविध रूप में वर्णित हुआ है। किन्तु कालिदास ने अपने त्रोटक विक्रमोर्वशीयम् में जो कथावस्तु आवद्ध की है, वह पद्यपुराण में अविकल रूप में वर्णित है। निस्संदेह यही विक्रमोर्वशीयम् का उद्‌गम–स्थल है। विद्वद्‌गण इस तथ्य से भिज्ञ ही हैं कि अभिज्ञानशाकुन्तल में वर्णित दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा भी पद्मपुराण से ली गयी है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है : सूर्योपस्थान से लौटते हुये राजर्षि पुरूरवा मार्ग में देवाङ्‌गनाओं का क्रन्दन सुनते हैं। उन्हें समाचार मिलता है कि चित्रलेखा के साथ कुबेर के भवन से लौटती हुई उर्वशी का केशी नामक दैत्य द्वारा बलपूर्वक अपहरण कर लिया गया है। यह सूचना पाकर राजा उर्वशी को मुक्त कराने हेतु पूर्व दिशा को प्रस्थान करते हैं और दैत्य केशी को परास्त कर तथा उर्वशी एवं चित्रलेखा को छुड़ाकर हेमकूट शिखर पर आते हैं। आकाश से हेमकूट शिखर पर रथ के उतरते समय उर्वशी स्खलन भय से राजा के कंधे का आलंब

लेती है। उर्वशी के स्पर्श से राजा का शरीर पुलकित हो जाता है और राजा पुरूरवा में राग के प्रथम चिन्ह दिखाई पड़ते हैं। उर्वशी की सकुशल वापसी पर उसकी सखियाँ राजा को धन्यवाद देती हैं। उसी समय देवराज इन्द्र का बुलावा लेकर चित्ररथ आते हैं। पर पुरूरवा अमरपुरी जाने में असमर्थता व्यक्त करते हैं। तदनन्तर चित्ररथ एवं सभी अप्सरायें आकाश में उड़ जाते हैं। उर्वशी में प्रेम के अंकुर फूट चुके हैं। अतः वह सस्पृह लोचनों से देर तक पुरूरवा को देखती रहती है और बड़ी देर बाद आकाश में उड़ती है। यहाँ नाटक का प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

प्रथम अंक में कुछ अतीव सुन्दर स्थल हैं।

यथा उर्वशी की रूप सम्पदा को देख कर राजा पुरूरवा विस्मय से कहते हैं : क्या यह रूप पुत्तलिका वेदाभ्यास से जड़ नारायण या अन्य ऋषि द्वारा निर्मित की जा सकती हैं ! नहीं ! यह किसी वृद्ध तपस्वी की निर्मित रचना नहीं है। इसके सृजन में कान्ति स्रोत चन्द्रमा ही प्रजापति रहे होंगे और श्रृंगार मूर्ति स्वयं कामदेव रहे होंगे।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
श्रृंगारैकरसः स्वयं नु मदनो भासो नु पुष्पाकरः।
वेदाम्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्त कौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।।

दैत्य से मुक्ति के बाद मूर्छा से चेतना में आती हुई उर्वशी का चित्रं भी कवि ने बड़े मनोरम और चित्रमय ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

आविर्भूते शशिनि तमसा रिच्यमानेव रात्रिः
वैशस्याचिर्तहुतभुज इव छिन्नभूयिष्ठधूमा।
मोहेनान्र्द्ररतनुरियं लक्ष्यते मुच्यमाना
गंगा रोधःपतनकलुषा गच्छतीव प्रसादम्।।

यह चन्द्रमा के उदित होने पर अंधकार से मुक्ति पाती हुई सी और धुंआ समाप्त हो जाने पर निखरती अग्नि सी तथा कलुषित जल के पश्चात् स्वच्छ हो रही गंगा सी लग रही है।

प्रथम अंक में एक अत्यन्त उत्कृष्ट और कोमल उपमा आई है। दैत्य केशी से मुक्ति पाकर जब उर्वशी प्रतीक्षा करती हुई अपनी सखी अप्सराओं से मिलती है तो कवि उपमा देता है—

यावत् पुनरियं सुभ्रू उत्सुकाभिः समुत्सुका।

सखीभिर्याति संपर्कम् लताभिः श्रीरिवार्तवी।।

रूपवती उर्वशी, अपने सुकुमारी लावण्यमयी सखियों से मिल रही है, मानों बसन्त ऋतु लताओं से आ मिली है।

नाटक के द्वितीय अंक में राजा उर्वशी द्वारा जागरित प्रेम की पीड़ा से व्यथित प्रमद वन में बैठ अपने मित्र विदूषक से हृदय के उद्‌गार प्रकट करता है और विदूषक के बारंबार समाश्वासन पर भी चित्त की शान्ति नहीं पाता। उधर उर्वशी वियोग की ज्वाला को सहन नहीं कर पाती और अभिसारिका रूप धारणकर अपनी प्रिय सखी चित्रलेखा के साथ प्रियतम के दर्शनार्थ छिपकर राजा के उपवन में आती है तथा वृक्षों के बीच से एक भोजपत्र में अपना प्रणय संदेश लिखकर राजा के पास गिराती है। वह पत्र पाकर राजा पुलकित हो जाता है। उसके शरीर में स्वेद बिन्दु झलकने लगते हैं। वह प्रेमपत्र को सुरक्षा हेतु मित्र विदूषक को देता है। चित्रलेखा प्रकट होकर राजा का अभिनन्दन करती है। किन्तु इसी समय आकाश में एक देवदूत का उद्‌घोष होता है : "चित्रलेखा, उर्वशी को शीघ्र तैयार करो। देवराज इन्द्र ललिताभिनय देखना चाहते है"। चित्रलेखा और उर्वशी तत्काल इन्द्रपुर को प्रस्थान करती हैं। राजा की वियोग व्यथा तीव्रतर हो जाती है।

इसी समय महाराज पुरूरवा की परिणीता महिषी औशीनरी दासियों सहित प्रमदवन में आती हैं और छिपकर राजा और विदूषक

का संलाप सुनती हैं। विदूषक की गलती से उर्वशी का प्रेमपत्र भी गिरकर हवा से उड़कर महारानी के हाथ में पहुँच जाता है और वह अतिशय क्रुद्ध होती हैं।

तृतीय अंक के प्रारंभ में विष्कंभक—में गालव और बेलव शिष्यों के मुख से नाटककार दर्शकों को सूचित करता है कि भरतमुनि द्वारा आयोजित लक्ष्मी स्वयंवर नाटक में उर्वशी लक्ष्मी की भूमिका कर रही थीं। संवाद में एक स्थल पर जहाँ उन्हें यह बोलना था कि मेरा मन पुरूषोत्तम में आसक्त है, उर्वशी ने शून्य मन से यह कह दिया कि मेरा मन पुरूरवा में आसक्त है। इस पर भरतमुनि अतीव कुपित हुये और उर्वशी को शाप दिया कि स्वर्गलोक से बाहर निकाल दी जाय। देवराज इन्द्र ने दया करके शाप की अवधि पुत्रजन्म पर्यन्त करा दी। स्वर्ग से निष्कासित उर्वशी पृथ्वी पर आती है और उसका पुरूरवा से अभिसार होता है। पहले तो राजमहिषी पतिप्रसादन व्रत के लिये राजा से मिलने महल की छत पर आती हैं जहाँ राजा वयस्य विदूषक के साथ उर्वशी की चर्चा में संलग्न है। उर्वशी छिपकर यह सब सुनती है और व्रतोपरान्त राजमहिषी के चले जाने पर पीछे से आकर कौतुकपूर्वक राजा के नेत्र मूँद लेती है। इस प्रकार राजा और उर्वशी का समागम होता है।

किन्तु राग की पुष्टि और चरमपरिणति के लिये विप्रलंभ अर्थात् वियोग आवश्यक है।

"न बिना विप्रलंभेन संयोगः पुष्टिमश्नुते।

कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते।।"

इस सिद्धान्त के अनुसार उर्वशी और राजा का मिलन दिखाकर कवि वियोग की स्थिति की सृष्टि करता है। विक्रमोर्वशीयम् का चतुर्थ अंक शाकुन्तल के चतुर्थ अंक की भाँति अतिशय मनोरम और कोमल है। उर्वशी राजा के साथ विहार हेतु गंधमादनवन में गयी हुई है। वहाँ किंचित प्रणयकुपिता वह गलती से एक निषिद्ध स्थान कुमार वन में

प्रवेश करती है और लता में बदल जाती है। राजा पुरूरवा सहसा उर्वशी के लुप्त हो जाने पर विरह की ज्वाला में जलने लगता है। वह विक्षिप्त सा इधर उधर दौड़ता है। मयूरों से, भ्रमरों से, हंसो से, चक्रवाकों से, कोकिलों से, अपनी प्रिया का वृतान्त पूछता फिरता है। अन्ततः एक असाधारण प्रभा वाली मणि पाता है जो लता रूप में परिणत उर्वशी से उसका मिलन कराती है।

नाटक के चतुर्थ अंक में कुछ स्थल अतीव कोमल और मर्मस्पर्शी हैं। कान्ता वियुक्त राजा नाचते हुए मयूर को देखकर उसके हर्ष का कारण सोचता है :

मृदुपवन विभिन्नो मत्प्रियायाः विनाशात्
धनरूचिर कलापो निःसपत्रो जातः।
इति विशलितवन्धे केशहस्ते सुकेश्याः
सति कुसुमसनाथे किं करोत्येष वर्ही।

पुनः प्रिया का कोई समाचार न बताने वाले हंस के प्रति राजा का उपार्लभ देखिये :

यदि हंस गता न ते नतभ्रूः
सरसो रोधसि दृक्पथं प्रिया मे।
मदखेल पदं कथं नु तस्याः
सकलं चोरगतं त्वया गृहीतम्।।

हंस ! यदि तुमने मेरी प्रिया को देखा नहीं तो यह मनोहर चाल कहाँ से चुरायी है ! भ्रमर से राजा कहता है :

मधुकर ! तुमने मेरी प्रिया के मुखोच्छवास की सुगन्ध नहीं पाई, अन्यथा इन कमल पुष्पों में तुम न चिपके होते।

मधुकर ! मदिराक्ष्याःशंस तस्याः प्रवृत्तिं
वरतनुरथवासौ नैव दृष्टा त्वया मे।

यदि सुरभिमवाप्यसि तन्मुखोच्छ्वासगन्धम्

तव रतिरभिविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन्।

पुनर्मिलन के उपरान्त राजा और उर्वशी राजधानी प्रतिष्ठानपुर को वापस लौटते हैं।

पंचम अंक के प्रारंभ में ही यह सूचना मिलती है कि कोई गृध्र संगममणि को (जिसने मिलन कराया था) आमिष खंड समझकर उठा ले गया था, उसे उर्वशी कुमार आयुष ने मार दिया हैं। विस्मित राजा यह सोचने लगता है कि मेरा यह पुत्र कहाँ से आया। उसी समय च्यवन ऋषि के आश्रम से एक कुमार को लेकर एक तपस्विनी आती है और राजा को सूचित करती है कि उर्वशी ने किसी कारणवश यह बालक जन्म लेते ही मेरे पास धरोहर रूप में सुपुर्द कर दिया था। पूज्यपाद च्यवनमुनि ने इसे सभी विद्याओं तथा धनुर्विद्या में शिक्षा दी है। आज जब यह ऋषिकुमारों के साथ पुष्प समिधा और कुश लेने गया हुआ था, इसने आश्रम विरूद्ध आचरण किया और एक गृध्र को वाण से मार डाला। यह वृतान्त पाने पर भगवान च्यवन ने यह आदेश दिया है कि उर्वशी की यह धरोहर उसे वापस कर दी जाय। राजा कुमार को हृदय से लगाता है। पर उर्वशी दुखी हो जाती है, क्योंकि पति से विछुड़ने तथा उसके स्वर्ग पुरी को वापस लौटने का समय आ गया। देवराज इन्द्र ने कहा था कि जब तुम्हारे पति तुम्हारे पुत्र का मुख देखेंगे तब तुम्हें इन्द्रपुरी में वापस लौटना होगा। उर्वशी से यह शर्त सुनकर राजा मूर्च्छित हो जाता है। पर लोगों द्वारा आश्वासन दिये जाने पर वल्कल धारण कर वन जाने को प्रस्तुत होता है। पर उसी समय इन्द्र के पास से आकर देवर्षि नारद यह सुख संदेश सुनाते हैं कि निकट भविष्य में देवासुर संग्राम होने वाला है और देवेश इन्द्र ने आपकी सहायता माँगी है, अतः अभी शस्त्र त्याग न करें। पुनरपि यह उर्वशी यावज्जीवन आपकी सहचरी होगी। तदुपरान्त राजकुमार आयुष का राज्याभिषेक करके पुरूरवा उर्वशी

सहित स्वर्ग को चले जाते हैं। नाटक यहीं इस भरत वाक्य के साथ समाप्त होता है :

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।

सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।

विक्रमोर्वशीयम् संस्कृत वाङ्मय की उत्कृष्ट कृतियों में है। इसका कथानक यद्यपि पद्मपुराण से लिया गया है, पर कवीश्वर कालिदास ने उसमें कवि स्वातंत्र्य से स्थान–स्थान पर परिवर्तन किये है। सर विलियम विलसन महोदय का तो यह मत है कि इस नाटक की सारी कथावस्तु अन्योक्ति है। इसमें नायक सूर्य और नायिका उषा है। कुछ काल के लिये दोनों मिलते है फिर अलग (विमुक्त) हो जाते हैं। केवल सूर्य नदियों, कूपों, तड़ागों, वृक्षों और पर्वतों में एकाकी भ्रमण करता है। दिवस के अवसान पर पुनः उषा से उसका मिलन होता है।

रस परिपाक की दृष्टि से, चरित्रचित्रण में, भावानुभावविभाव में, रति में, गुण में, सर्वथा यह उत्कृष्ट काव्य है। इसके नायक राजर्षि पुरूरवा धीरोदात्त नायक हैं। नायिका रक्ताभिसारिका, दिव्या असाधारण उर्वशी हैं, प्रतिनायिका महिषी औशीनरी हैं जो कलहान्तरिता, मध्या, धीरा स्वकीया नायिका हैं। मलयानिल द्यूत मुकुलादि उद्दीपन विभाव हैं। रति स्थायी भाव, संभोग श्रृंगार अंगी है। नाटक की रीति पांचाली, गुण माधुर्य, राग मांजिष्ठ और वृत्ति कौशिकी है।

**

स्वप्नवासवदत्तम्

संस्कृत नाटक के विकासक्रम में महाकवि भास का विशिष्ट स्थान है। नाटक रचना के इस आदि काल में भास ने जिस विपुल एवं उच्चस्तरीय नाटक साहित्य की सृष्टि की और संस्कृत वाङ्मय को जिस महार्घ सम्पत्ति का उपहार दिया, उसके लिए सारा संस्कृत–भाषी जगत उनका ऋणी रहेगा। भास संस्कृत के प्रचीनतम नाटककारों में हैं। विश्वविश्रुत अभिज्ञान शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीयम् के प्रणेता नाटक–सम्राट कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् के प्रारम्भ में भास को यशस्वी नाटककार स्वीकार किया है। "प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।"

बाणभट्ट और दण्डी ने भी नाटककार के रूप में भास के यश का गुणगान किया है।

हर्षचरित में ललित संस्कृत गद्य के अप्रतिम सम्राट बाणभट्ट कहते हैं–

सूत्रधारकृतारंभैः नाटकैः बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।।

सूत्रधार द्वारा आरंभ होने वाले, अनेक भूमिका वाले और पताकाओं वाले नाटकों से भास यशस्वी हुये।

इसी प्रकार दण्डी भी महाकवि भास की प्रशस्ति में कहते हैं–

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः।।

महान गीतकार जयदेव ने भास को कविताकामिनी का हास कहकर अपनी श्रद्धांजलि दी है–

भासोहासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।

इन प्रशस्तियों से यह सुस्पष्ट है कि भास बाणभट्ट, जयदेव, दण्डी और कालिदास के भी पूर्ववर्ती थे और संस्कृत जगत में नाटककार के रूप में प्रचुर यश प्राप्त कर चुके थे।

भास के नाटक कब काल के गर्त में विलीन हो गये और दृष्टि से ओझल हो गये, यह ज्ञात नहीं है। किन्तु महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री जी ने सन् 1909 में पद्मनाभपुरम् के समीप मल्लिकारमठम् में भास के नाटकों की हस्तलिखित प्रतियाँ पाई और उन्हें 1912 में प्रकाशित करके इन नाटकों का उद्धार किया। जो तेरह नाटक गणपतिशास्त्री जी के प्रयास से प्रकाश में आये, वे थे–

दूतवाक्यम, कर्णभारम्, दूतघटोत्कचम्, मध्यमव्यायोगः, पंचरात्रम्, उरूभंगम्, अभिषेकनाटकम्, बालचरितम्, अविमारकम्, प्रतिमानाटकम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, स्वप्नवासवदत्तम् एवं चारूदत्तम्।

कथावस्तु की दृष्टि से भास के 13 नाटकों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **रामायण के कथानक पर आधारित नाटक**
   प्रतिमानाटकम् एवं अभिषेकनाटकम्।
2. **महाभारत के कथानक पर आधारित नाटक**
   बालचरितम्, पंचरात्रम्, मध्यमव्यायोगः, दूतवाक्यम्, उरूभंगम्, कर्णभारम्, दूतघटोत्कचम्।
3. **वत्सराज उदयन के आख्यान पर आधारित नाटक**
   स्वप्नवासवदत्तम् एवं प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्।
4. **कल्पित कथावस्तु वाले नाटक**
   अविमारकम्, और चारूदत्तम्।

भास के नाटक संस्कृत के उत्कृष्ट नाटकों में माने जाते है। उनमें रसपरिपाक और नाटकीयता का मणिकांचन संयोग है। भास की शैली सरल, अलंकार के बोझ से रहित, सूक्ति संकुल, सरस और प्रभावोत्पादक है। उसमें कृत्रिमता नहीं दीखती। भाषा समास बोझिल नहीं है। उनके नाटक अभिनेय हैं और श्रृंगार, करूणा तथा हास्य रस से सराबोर हैं। स्वप्नवासवदत्तम् नाटक भास की सर्वोत्कृष्ट रचना है। राजेश्वर कहते है–

भासनाटकचक्रेहि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।।

नाटकों की अग्निपरीक्षा हुई और स्वप्नवासवदत्तम् को अग्नि में डाला गया तो अग्नि इस नाटक को जला न सकी।

नाटकानां अग्निपरीक्षायां स्वप्नवासवदत्तं नाटकं
प्रखरतां एव लेभे, न च विनष्टतां गतम्।

स्वप्नवासवदत्तम् छः अंकों का नाटक है। वत्सराजउदयन का मगधकुमारी पद्मावती से विवाह और मगध की सहायता से पुनः उनके द्वारा खोये हुए राज्य की प्राप्ति इसका कथ्य विषय है। मंत्री यौगन्धरायण अपने बुद्धिबल और कूट रचना से राजमहिषी वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने का प्रवाद प्रसारित करके उदयन का विवाह मगधकन्या पद्मावती से कराने की भूमिका तैयार करते है और मगध नरेश की सहायता से उदयन पुनः अपना अपहृत राज्य प्राप्त करते हैं। वत्सराज का स्वप्नदृश्य इस नाटक का कोमलातिकोमल अंश है। उसी पर नाटक का नामकरण हुआ है।

नाटक के प्रथम अंक में तपोवन का दृश्य है। इसमें वत्सराज के मंत्री यौगन्धरायण परिब्राजक वेष में राजमहिषी वासवदत्ता को छिपाये हुये घूम रहे हैं। उन्होंने ऐसा प्रवाद जनसाधारण में फैला दिया

है कि महारानी और मंत्री यौगन्धरायण आग में जल गये हैं। मगधनरेश की बहन पद्मावती अपनी माँ से मिलने तपोवन में आती है और वहीं मंत्री यौगन्धरायण चतुराई से वासवदत्ता को अपनी भगिनी बताकर उसे न्यासरूप में पद्मावती के संरक्षण में रख देते हैं।

द्वितीय अंक में उदयन के साथ पद्मावती का विवाह निश्चित होने की सूचना मिलती है।

अपने सामने अपने पति को दूसरा विवाह करते देखकर वासवदत्ता स्वभावतः आहत होती है।

तृतीय अंक में उदयन के पुनर्विवाह पर वासवदत्ता को दुखी दिखाया गया है। विडंबना यह कि पद्मावती उसे ही विवाह की माला गूँथने को कहती है।

चतुर्थ अंक में नाटककार ने पद्मावती और वासवदत्ता तथा उदयन और विदूषक के बीच कुछ रोचक संवादों की संरचना की है, यथा, पद्मावती वासवदत्ता से कहती है "आर्यपुत्र मुझे जितने प्रिय हैं, क्या वासवदत्ता को भी उतने ही प्रिय थे" वासवदत्ता सहसा कह बैठती है, 'उससे भी अधिक प्रिय थे'। पद्मावती असावधानी में पूछती है 'तुम्हें कैसे मालूम ?' तो वासवदत्ता सँभलकर एक चतुराई भरा उत्तर देती है। 'यदि ऐसा न होता तो अपने परिजनों को छोड़कर वह उदयन के साथ क्यों भागती।'

इसी प्रकार उदयन और विदूषक का एक रोचक संवाद है। विदूषक राजा से पूछता है, मित्र, वासवदत्ता और पद्मावती में आपको कौन अधिक प्रिय है ! वत्सराज पहले तो टाल जाते हैं; पर विदूषक के आग्रह पर कहते हैं, यद्यपि रूप, गुण आदि में पद्मावती अधिक है, पर वासवदत्ता में संलग्न मेरे मन को आकृष्ट नहीं करती। यह सुनकर वहीं छिपी हुयी वासवदत्ता को परम संतोष होता है। पद्मावती भी राजा के शील की प्रशंसा करती है। विदूषक द्वारा वासवदत्ता के

मरण का स्मरण दिलाने पर राजा की आँखों में अश्रु छलक पड़ते हैं। पद्मावती प्रकट होकर उनका मुखमार्जन करती है।

पंचम अंक में पद्मावती की शिरोवेदना की सूचना मिलती है। उदयन उसे देखने समुद्रगृहक में जाते हैं। पर पद्मावती वहाँ नहीं पहुँची है। राजा वहीं लेट जाते हैं और उन्हें नींद आ जाती है। उसी समय वासवदत्ता समुद्रगृहक में आती है और उदयन को सोयी हुई पद्मावती समझकर उसके पार्श्व में लेट जाती है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता का नाम उच्चारण करता है और तब सहसा वासवदत्ता को पता लगता है कि यह पद्मावती नहीं, अपितु उदयन है। वह कुछ देर वहाँ ठहरती है और उदयन की लटकती बाँह को उठाकर ऊपर रखती है। फिर बाहर चली जाती है। तदनंतर राजा की नींद खुलती है और वह उसको पकड़ने दौड़ता है, पर द्वार में टकराकर गिर जाता है। इस समय विदूषक वहाँ आता है। उदयन कहता है। 'मैंने वासवदत्ता को देखा है।' पर विदूषक उसे स्वप्न कहता है। उदयन कहता है कि यदि यह स्वप्न था तो स्वप्न ही सदा बना रहे।

इसी समय मगधराज का कंचुकी आकर उदयन को सूचना देता है कि आपका अमात्य रुमण्वान शत्रु को मारने के लिए सेना के साथ तैयार है और मगधराज की सेना भी उसकी सहायता हेतु जा रही है। आप भी तैयार हो जायँ।

पष्ठ अंक में महासेन का कंचुकी तथा वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा अवन्ती से उदयन से भेंट करने आते हैं और वासवदत्ता का एक चित्र राजा को देते है। उस चित्र को देखकर पद्मावती कहती है, 'ऐसी ही एक स्त्री मेरे पास एक ब्राह्मण ने प्रोषित–पतिका कहकर न्यास में रखी है।'

उसी समय यौगन्धरायण अपना न्यास वापस माँगने को आते हैं। वासवदत्ता लाई जाती है और सब लोग उसे पहचान लेते हैं। पद्मावती भी अविनय के लिए वासवदत्ता से क्षमा माँगती है।

यौगन्धरायण भी उस समय अपनी योजना का रहस्य उद्घाटित करते हैं। भरतवाक्य के साथ यहाँ नाटक समाप्त होता है।

स्वप्नवासवदत्तम् महाकवि भास के नाटक–प्रतिभा–पादप का सर्वोत्कृष्ट फल है। संरचना, चरित्रचित्रण, संवाद, प्रकृति वर्णन, रसपरिपाक सभी दृष्टि से यह नाटक उच्चकोटि में प्रतिष्ठित होता है। समग्र नाटक में स्थल–स्थल पर सहजरूप में गुंफित सूक्तियाँ कवि की मौलिकता और सार्वभौमिकता को उजागर करती हैं यथा :–

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रार पंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः।

दुःखं त्यक्तुं वद्धमूलानुरागः।

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले।।

स्वप्नवासवदत्तम् का प्रधान रस श्रृंगार ही है। उसके संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्ष सामने आते हैं। यत्र तत्र हास्य रस भी प्रस्फुटित हुआ है।

नाटक का प्रधान नायक उदयन धीरललित नायक और वासवदत्ता धीरा नायिका है।

**

प्रसन्नराघवम्

13वीं शताब्दी में रचित 'प्रसन्नराघवम्' संस्कृत वाङ्मय का एक सुप्रसिद्ध नाटक है। इसके रचयिता जयदेव द्वारा इस नाटक की प्रस्तावना में गुम्फित तथा सूत्रधार के मुख से कहलाया गया यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है :

यस्याश्चोरः चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो–हर्षो हृदयवसतिः पंचवाणस्तु वाणः
केषां नैषा कथय् कविताकामिनीं कौतुकाय।।

इसमें संस्कृत काव्य के पूर्व सूरियों कवि चोर, मयूर, भास, कालिदास, श्रीहर्ष और वाणभट्ट का सादर नाम लिया गया है।

कवि जयदेव को गीतगोविन्दकार जयदेव से समरूप चिन्हित करना भ्रामक होगा। भक्तशिरोमणि महाकवि जयदेव का नाम विश्वविश्रुत है। सकलकलानिधि लीलावतार श्रीकृष्ण का संगीतमय गुणगान करने वाले अमर भक्तिगीत गीतगोविन्दम् के गायक जयदेव को कौन नहीं जानता।

किन्तु 'प्रसन्नराघवम्' नाटक के रचयिता आचार्य जयदेव अपर जयदेव हैं। गीतगोविन्दकार जयदेव बंगाल के निवासी थे। वे वंगनरेश लक्ष्मणसेन की राजसभा के पंचरत्नों में थे और उनका जीवनकाल 12वीं शताब्दी में निश्चित किया गया है। 'प्रसन्नराघवम्' के प्रणेता जयदेव 13वीं शती के हैं। वे मिथिला निवासी थे। जयदेव कौण्डिन्य गोत्र के थे। उनकी माता का नाम सुमित्रा और पिता का नाम महादेव था।

कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयोः
अयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः।

कौण्डिन्यगेत्रीय आचार्य जयदेव हरिमिश्र के शिष्य थे। तत्कालीन विद्वत् समाज में वे पीयूषवर्ष के नाम से विख्यात थे। 'प्रसन्नराधवम्' के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाओं में अलङ्कारग्रन्थ 'चन्द्रालोक' विशेष प्रसिद्ध है।

'चन्द्रालोकममुम् स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कृती।

आचार्य जयदेव ने एक तर्कशास्त्रज्ञ के रूप में गङ्गेश उपाध्याय के 'तत्वचिन्मामणि' पर 'आलोक' नामक टीका भी लिखी है। कुछ विद्वानों के अनुसार जयदेव दक्षिण भारत में राजाश्रय में रहे थे।

'प्रसन्नराधवम्' की कथावस्तु विश्वविश्रुत रामकथा है। राम की पुरातन, अपूर्व, अप्रतिम गाथा ने युगों से अधिसंख्य लेखकों, कवियों, नाटककारों, सन्तों, भक्तजनों और विचारकों को सृजन और अभिव्यक्ति की प्रेरणा दी है। आचार्य जयदेव ने भी अपने नाटक के लिये यही कथावस्तु चुनी। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' से 350 वर्ष पूर्व रचित इस नाटक की कथावस्तु और मानस की कथावस्तु में अत्यधिक और सुस्पष्टलक्षित साम्य है। तुलसीदास ने रामचरितमानस का अतीव लोकप्रिय, सुकोमल और रस निर्भर भरित वाटिका विहार प्रकरण जयदेव के प्रसन्नराधवम् से लिया है। वाल्मीकि रामायण में यह प्रकरण नहीं है। इसी प्रकार परशुराम के धनुषयज्ञ में आने, कोप प्रदर्शित करने और अनन्तर राम को पहचानकर चले जाने की कथा भी जिस रूप में तुलसीदास ने प्रस्तुत की है, वह जयदेव के नाटक में प्रस्तुत रूप से साम्य रखती है। वाल्मीकि रामायण में परशुराम राम को विवाहोपरान्त लौटते हुए मार्ग में मिलते हैं न कि विवाह मण्डप में।

नाटक के प्रथम अंक में नूपुरक और मंजीरक नामक बन्दीजन सीता–स्वयंवर में समागत अनेकानेक राजाओं का और उनके पराक्रम का परिचय कराते हैं। लंकेश रावण और वाणासुर भी स्वयंवर में आते हैं और अपने पौरुष और पराक्रम की गर्वोक्ति करते हैं; किन्तु शिवधनुष को नहीं उठा पाते।

द्वितीय अंक के आरम्भ में 'निष्कंभक में राम के वाणों से ताटका और सुबाहु के मारे जाने की सूचना मिलती है तथा राम और लक्ष्मण मंच पर आते हैं। वे उद्यान मे मुनि विश्वामित्र की सायंतन पूजा हेतु फूल चुनने जाते हैं। सीता भी सखियों सहित गौरी पूजन के लिये वहाँ आती हैं। राम और सीता का यहाँ प्रथम दर्शन होता है। यह प्रकरण समग्रतः तुलसीदास के वाटिका वर्णन जैसा है। लतान्तरित राम का लताभवन से प्रकट होना, सीता से साक्षात्कार, सखियों का प्रहसन, विनोद और वक्रोक्ति सब रामचरितमानस के विवरण सा ही है।

तृतीय अंक में विश्वामित्र राम लक्ष्मण सहित मंच पर आते हैं। जनक उनका स्वागत करते हैं। विश्वामित्र द्वारा आदिष्ट राम धनुष तोड़ते हैं।

चतुर्थ अंक परशुराम के आख्यान को समर्पित है। मंच पर जामदग्न्य परशुराम का अवतरण होता है। शिवधनुष के टूटने पर परशुराम का कोप, राम से आलाप प्रत्यालाप और अन्ततः परशुराम द्वारा रामरूप पुराण पुरुष को पहचानने के साथ यह अंक समाप्त होता है।

पंचम अंक में रामायण के अयोध्याकाण्ड से लेकर किष्किन्धा कांड तक का समस्त घटनाक्रम एक अभिनव विधा में प्रस्तुत किया गया है। गङ्गा, यमुना, सरयू, गोदावरी, तुङ्गभद्रा, सागर और हंस के परस्पर संवाद के माध्यम से कैकेयी की वर याचना, राम का वनगमन, दशरथ का प्राणोत्सर्ग, कांचनमृग कथा, सीताहरण, जटायु सुद्ध, सुग्रीव से मैत्री और हनुमान तथा वानरसेना का सीता की खोज में भेजा जाना यह सब रंगशाला के सामाजिकों को सूचित किया जाता है।

छठे अंक में राम का विरह विलाप, लंका में त्रिजटा और सीता का संवाद, रावण द्वारा सीता का प्रताड़न, हनुमान का आगमन, लंका

दहन, अक्षयकुमार वध और राम की मुद्रिका देकर सीता को आश्वासन आदि वृतान्त अतीव कौशल से नाटककार द्वारा गुम्फित किये गये हैं।

सप्तम अंक में एक विद्याधर और विद्याधरी के संवाद के माध्यम से राक्षस सेना और वानर सेना का युद्ध, मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण की मूर्छा, हनुमान द्वारा संजीवनी लाना, रामरावण युद्ध और अन्ततः रावणवध का वृतान्त वर्णित किया गया है। पुष्पक विमान द्वारा राम के अयोध्या पुनरागमन के साथ नाटक समाप्त होता है।

संस्कृत नाटकों की प्रचलित और मान्य परम्परा में रचित जयदेव का 'प्रसन्नराधवम्' एक उत्कृष्ट नाटक है। अन्य संस्कृत नाटकों की भांति इस नाटक में भी चरित्र चित्रण की प्रधानता नहीं है और न वह नाटककार का अभीष्ट है। किसी ज्वलंत सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक समस्या का नाटकीय उद्घाटन भी नाटककार का लक्ष्य नहीं है। एक सुविख्यात और जनसाधारण में सुपरिचित विषय और आख्यान को लेकर उसका लोकरंजक और काव्यमय प्रस्तुतीकरण तथा श्रृंगार, वीर, करुणादि रसों की निष्पत्ति ही संस्कृत नाटककार का प्रधान लक्ष्य होता है।

इस नाटक में भी रामायण की सुविख्यात कथा को नाटक की विषय वस्तु बनाकर उसका सुललित और काव्यमय प्रस्तुतीकरण हुआ है। नाटक में प्रारंभ से लेकर अन्त तक शताधिक ललित छन्दों की माला गुँथी हुयी है जो अपनी मौलिकता, अनुप्रास छटा, लालित्य और भावों के नवोन्मेष से दर्शक को आह्लादित करते हैं। प्रत्येक अंक में अनूठे भावों और रसनिर्भर श्लोकों से गुम्फित नाटक कवि के अद्भुत कवित्व और पाण्डित्य को उद्घाटित करता है।

कुछ वर्णन तो अतीव काव्यमय और रसपूरित है। उदाहरणार्थ वाटिका में प्रथमवार जानकी को देखकर राम के ये उद्गार :

केयमश्यामोपलविरचितोल्लेखहेमरेखा–

लग्नैरङ्गैः कनककदलीकन्दलीगर्भगौरैः।

हारिद्राम्बुद्रवसहचरं कान्तिपूरं वहद्भिः
कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति।।

अथवा

सर्वस्वं नवयौवनस्य भवनं भोगस्य भाग्यं दृश्यं
सौभाग्यं मदविभ्रमस्य जगतः सारं फलं जन्मनः।
साकूतं कुसुमायुधस्य हृदयं रामस्य तत्वं रतेः
श्रृंगारस्य रहस्यमुत्पलदृशस्तत्किंचिदालोकितम्।।

प्रसन्नराधवम् के प्रणेता जयदेव अलङ्कार और छन्दशास्त्र के आचार्य थे। उनकी एक अन्य रचना चन्द्रालोक इस का प्रमाण है। प्रसन्नराधवम् में आदि से अन्त तक अनुप्रास की एक अद्वितीय छटा सर्वत्र दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ

कर्णे निधाय च पिधाय च कण्ठपीठे
धृत्वा च मूर्धनि नते हृदये च कृत्वा।
चोरापहारचकितेन चिरं मयैष
त्वत्सूक्त मौक्तिकगणः परिरक्षणीयः।।

पुनः रावण की गर्वोक्ति में अनुप्रास की यह अनुपम छटा देखिये।

उद्दण्डचण्डिमलसद्भुजदण्डखण्ड
हेलाचलाचलहराचल चारुकीर्तिः।
कीदृग्यशस्तुलितबालमृणालकाण्ड–
कोदण्डकर्षणकदर्थनयानया मे।।

सीता और सखी के संवाद में भी अनुप्रास और चित्र पाठक को मुग्ध कर लेते है।

मदनवधूनूपुर रवरमणीयं किमपि किमपि कूजन।
माकन्दमुकुलमधुरस मधुरमुखो मधुकरो भ्रमति।।

दलदमलकोमलोत्पलपलाशशंकाकुलोऽयमलिपोतः।
तव लोचनयोरनयोः परिसरमनुवेलमनुसरति।।

नाटक में प्रकृति चित्रण उत्कृष्ट स्तर का है। उदाहरणार्थ सप्तम अंक में राम और लक्ष्मण की चन्द्रोदय पर उक्तियाँ :

पश्योदेति वियोगिनां दिनमणिः शृंगारदीक्षामणिः
प्रौढानङ्गभुजङ्गमस्तकमणिश्चण्डीशचूडामणिः।
तारामौक्तिकहारनायकमणिः कन्दर्पसीमन्तिनी
कात्र्चीमध्यमणिश्चकोरपरिषच्चिन्तामणिश्चन्द्रमाः।।
स्वैरं कैरवकोरकान् विदलयन् यूनां मनः खेदयन्
अम्भोजानि निमीलयन् मृगदृशां यागं समुन्मीलयन्।
ज्योत्स्नां कन्दलयन् दिशो धवलयन् उद्बेलयन् वारिधीन्
कोकानाकुलयन् तमः कवलयन् इन्दुः समुज्जृम्भते।।

चन्द्रोदय के अनूठे चित्रण के साथ ही इस अनुप्रास मंडित कविता में कैसा अद्भुत प्रवाह है।

प्रसन्नराघवम् के कथानक और तुलसीदास के रामचरितमानस के कथानक में अद्भुत साम्य है। तुलसीदास ने जयदेव का यह नाटक निश्चय ही पढ़ा था। समग्र वाटिका प्रसङ्ग और अनेक उपमायें उन्होंने अविकल रूप में प्रसन्नराघव नाटक से ली हैं।

धनुषयज्ञ में वाणासुर धनुष को उठाने का प्रयास करता है किन्तु धनुष तनिक भी नहीं हिलता। जयदेव मंजीरक के मुख से कहलाते हैं:

वाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमानम्
नेदं धनुश्चलति किंचिदपीन्दुमौलेः।
कामातुरस्य वचसामिच संविधानै–
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्।।

तुलसीदास ने बिल्कुल यही उपमा इसी स्थल पर प्रयोग की :

डिगै न शंभुशरासन कैसे।

कामी वचन सती मन जैसे।।

अपि च

सप्तम अङ्क में रामरावण युद्ध का विवरण देती हुई विद्याधरी कहती है :

कथं पुन, रथस्थितेन रावणेन समं भूमिस्थितस्य राघवस्य समरो भविष्यति।

तुलसी कहते हैं :

रावण रथी विरथ रघुबीरा।

देखि विभीषण भयउ अधीरा।।

एक लघु लेख में आचार्य जयदेव के प्रसन्नराघवम् की विधिवत् समीक्षा संभव नहीं है। अतः अपना लेख यहीं समाप्त करता हूँ।

**

रत्नावली नाटिका

रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द ये तीन नाटक कवि श्री हर्ष की कृतियाँ हैं, इस बिन्दु पर इतिहासकारों में कोई विवाद नहीं है। किन्तु यह श्री हर्ष कौन थे–नैषधचरित के रचयिता कश्मीर नरेश हर्ष अथवा कन्नौज नरेश हर्षवर्धन–इस बिन्दु पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विल्सन महोदय काश्मीर नरेश हर्ष को इन नाटकों का प्रणेता मानते हैं। किन्तु अधिकांश विद्वान कन्नौज नरेश महाराज हषवर्धन, जो साहित्य में श्री हर्ष के नाम से विख्यात हुए, को इन नाटकों का रचयिता स्वीकार करते हैं। मम्मट के काव्यप्रकाश में एक स्थल पर "श्री हर्षाद्धावकादीनाम् धनम्" इस उल्लेख से कतिपय विद्वान यह निष्कर्ष निकालते हैं कि धावक नामक कवि ने श्री हर्ष से धन प्राप्त करके उनके नाम से नाटक प्रकाशित किए। कुछ विद्वान कादम्बरी के प्रणेता महाकवि बाणभट्ट को ही इन नाटकों का कर्ता मानते हैं। किन्तु मयूर और वाण जैसे महान कवियों को प्रश्रय देने वाला और उनकी उत्कृष्ट कृतियों का गुणवेत्ता हर्षवर्धन स्वयं एक उच्च कोटि का कवि रहा होगा, इसमें सन्देह का स्थान नहीं है। अतः हम कान्यकुब्जाधिपति महाराज हर्षवर्धन को ही रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द नाटकत्रय का रचयिता मानकर आगे बढ़ते हैं और उनके नाटक रत्नावली का विवेचन करते हैं।

वत्सराज उदयन संस्कृत साहित्य में एक सुपरिचित नाम है। उदयन की गाथाओं को लेकर अनेक कवियों ने रचनायें की हैं। रत्नावली नाटिका भी वत्सराज उदयन और सिंहल की राजकुमारी रत्नावली की प्रणयगाथा को लेकर रची गयी है। राज महिषी वासवदत्ता की ईर्ष्या से अन्तरित यह प्रणय व्यापार बड़े रोचक रूप में गुम्फित किया गया है। रत्नावली का कथानक गुणाढ्य की वृहत्कथा से लिया गया है। इसमें वत्सराज उदयन का संपूर्ण चरित्र वर्णित नहीं किया

गया है; अपितु उनके द्वितीय विवाह के उत्तर काल का ही वर्णन है। प्रसंग वश इसमें वत्सराज का कोशल अभियान और कोशलराज की मृत्यूपरान्त कोशल पर उदयन की विजय का भी वृतान्त आया है।

अंक क्रम में रत्नावली की कथा इस प्रकार है :—

नान्दी और प्रस्तावना के उपरान्त विष्कंभक में कवि हमें वत्स के अमात्य यौगन्धरायण द्वारा सूचित करता है कि एक सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी पर यौगन्धरायण अपने स्वामी के लिए सिंहल की राजकन्या का हाथ माँगते हैं।

यह राजपुत्री वत्स राज के कंचुकी वाभ्रव्य और सिंहल राज के अमात्य वसुभूति के साथ कौशाम्बी को आती हुई नौका–दुर्घटना में फँस जाती है और समुद्र में गिर जाती है। किन्तु दैवयोग से एक काष्ठ खण्ड को पा जाती है और इतस्ततः तैरती हुई एक वणिक के हाथ पड़ती है जो सिंहल से कौशाम्बी आ रहा है। कन्या के गले में रत्नों की माला देखकर वणिक अनुमान लगाता है कि यह कोई राजकुमारी है और वह उसे कौशाम्बी ले आता है। यौगन्धरायण उस कन्या को राजमहिषी वासवदन्ता के पास धरोहर के रूप में रख देते हैं।

तदनन्तर विदूषक के साथ राजा उदयन मंच पर आते हैं। वे मदन–महोत्सव मनाती हुई सुन्दरियों की केलि क्रीड़ा देखते हैं। उसी समय दो दासियाँ आकर राजा को महिषी वासवदन्ता का यह सन्देश देती है कि वे मकरन्द उद्यान में जाकर भगवान कुसुमायुध की पूजा करेंगी, अतः महराज भी वहाँ पधारें।

राजा वसन्तक के साथ मकरन्द उद्यान में आते हैं और उद्यान की छटा का आनन्द लेते हैं। उसी समय कांचन माला और सागरिका के साथ महारानी वासवदत्ता मदनदेव की पूजा हेतु वहाँ आती हैं। किन्तु महारानी यह नहीं चाहती कि सुन्दरी सागरिका उनके पति वत्सराज के सामने पड़े। अतः वे किसी बहाने से उसे राजभवन

वापस जाने को कहती हैं और फिर विधिवत मदन पूजा करती हैं। सागरिका सहज कुतूहलवश मदन पूजा देखना चाहती है। वह समीप में ही लताओं के पीछे छिपकर पूजा देखती है और मदनपूजा के पश्चात जब महारानी अपनी पति की पूजा करती हैं तो वत्सराज को देखकर सागरिका उन्हें मूर्तमान मदनदेव ही समझती है। बाद में जब उसे ज्ञात होता है कि वे महाराज उदयन हैं तो वह प्रेमाभिभूत हो जाती है। महारानी पूजा से निवृत्त होकर महाराज के साथ अन्दर चली जाती हैं।

नाटक के द्वितीय अंक में सागरिका की एक सखी सुसंगता उसे ढूंढती हुई कदली–गृह पहुँचती है। वहाँ प्रेमासक्त सागरिका अपने प्रिय उदयन का चित्र बना रही है।

सुसंगता के पूछने पर कि यह किसका चित्र है, वह बात को छिपाती हुई कहती है कि अनंग भगवान का चित्र है। सुसंगता हास्य पूर्वक कहती है कि इस चित्र में मदनदेव के साथ उनकी प्रिया रति कहाँ है। यह कहकर वह उस चित्र के पार्श्व में सागरिका का चित्र बना देती है। सागरिका पहले तो रूष्ट होती है पर बाद में उसे अपनी प्रेम व्यथा बताती है। उसी समय एक दुष्ट बानर के आने से वे दोनों डर जाती हैं और चित्रफलक को वहीं छोड़कर भाग लेती हैं।

तदनन्तर राजा उदयन वसन्तक के साथ एक अकालकुसुमित मल्लिका को देखने वहां आते हैं और चित्रफलक उनके हाथ लग जाता है। उसमें चित्रित सुन्दरी के रूप की राजा और विदूषक प्रशंसा करते हैं। अपनी सारिका को ढूंढती हुई सागरिका और सुसंगता वहाँ आकर अपनी इस प्रशंसा पर प्रसन्न होती हैं। सुसंगता चित्रफलक को मांगने के बहाने राजा के पास जाती है और उन्हें सागरिका के पास लाकर उनका मिलन कराती है। पर उसी समय महारानी वासवदन्ता के वहाँ आ जाने पर उनके संयोग में विघ्न पड़ जाता है। विदूषक की गलती से वहाँ गिरे हुए चित्रफलक पर राजा और

सागरिका का चित्र साथ–साथ देखकर रानी बहुत क्रुद्ध होती है और वहाँ से चली जाती है। राजा उन्हें मनाने अन्तःपुर में जाते हैं।

इस प्रकार नाटक के प्रथम अंक में सागरिका के हृदय में और द्वितीय अंक में राजा के हृदय में, कवि द्वारा प्रेम का बीजारोपण किया गया है। उदयन और सागरिका के मिलन की फलप्राप्ति में मुख्य अन्तराय वासवदन्ता की ईर्ष्या है। उसका भी बीजारोपण द्वितीय अंक में हुआ है।

तृतीय अंक में घटनाक्रम चरम नाटकीय बिन्दु पर पहुँचता है। वसन्तक के परामर्श पर राजा द्वारा यह योजना बनायी जाती है कि सागरिका महारानी वासवदन्ता का वेष धारण करके राजा के अभिसार के लिए जाय। नियत अभिसार स्थल पर जब राजा वसन्तक के साथ सागरिका की प्रतीक्षा करता होता है, उस समय इस षडयन्त्र से अनभिज्ञ वासवदत्ता स्वयं वहाँ अचानक आ जाती है। यह सोचकर कि पूर्व योजनानुसार वासवदत्ता के वेष में सागरिका आ गयी है, राजा उसके समक्ष अपने प्रेम का प्रस्ताव रखता है। राजा को इस प्रकार परस्त्री आसक्त पाकर महारानी वासवदत्ता अपना अवगुंठन उठाकर स्वयं को प्रकट करती हैं। राजा उन्हें देखते ही भय और विस्मय से किंकर्तव्यविमूढ़ उनके पैरों पर गिर पड़ता है। किन्तु वासवदत्ता राजा को भूमि पर ही पड़ा छोड़कर चली जाती है। अब वासवदत्ता वेषधारिणी सागरिका वहाँ आती है। वह अत्यन्त डरी हुई है। वासवदत्ता द्वारा अपने भावी अपमान और उपहास को सोचकर वह आत्महत्या पर उद्यत होती है। राजा यह समझता है कि महारानी मेरी परस्त्री आसक्ति को सहन न कर सकने के कारण आत्महत्या करने जा रही हैं। वह उन्हें छुड़ाता है। फिर जब उसे ज्ञात होता है कि यह सागरिका ही है तो वह उसको हृदय से लगाता है। इसी समय वासवदत्ता पुनः वहाँ आ जाती है और उन दोनों को उस दशा में देखकर अतिशय क्रुद्ध होकर सागरिका और बसन्तक दोनों को पाश में बांधकर ले जाती है।

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में विदूषक और सुसंगता के संवाद द्वारा हमें सूचना मिलती है कि राजा के मनाने पर महारानी ने विदूषक को मुक्त कर दिया है; पर सागरिका को उज्जयिनी ले जाकर कहीं कारागार में डाल दिया गया है। सागरिका के वियोग में विक्षिप्त राजा निरन्तर उसे ही सोचता रहता है। तभी रूमण्वान की बहिन का पुत्र विजय वर्मा आकर कोशल देश पर रूमण्वान की विजय का समाचार देता है। विजय वर्मा के चले जाने पर एक इन्द्रजालिक आकर अपना जादू दिखाता है। सिंहलराजकुमारी को किसी सिद्ध ने यह बताया था कि जो व्यक्ति उसका पाणिग्रहण करेगा, वह सार्वभौम राजा होगा। इस विश्वास पर यौगन्धरायण ने सिंहल नरेश से रत्नावली के लिए प्रार्थना की। पर वासवदत्ता को इससे दुःख होगा, यह सोचकर सिंहल नरेश ने अपनी पुत्री को देना स्वीकार नहीं किया। तब यह अफवाह फैलायी गयी कि महारानी वासवदत्ता आग में जल कर मर गयीं। पुनः महाराज ने दूत भेजकर रत्नावली का हाथ माँगा। इस बार सिंहल नरेश मान गए और अपनी पुत्री को कौशाम्बी भेज दिया। पर मार्ग में नौका दुर्घटना में रत्नावली डूब गयी। अपने मामा सिंहल नरेश की पुत्री के डूब जाने का समाचार सुनकर वासवदत्ता मूर्छित हो जाती है। इसी समय अन्तःपुर में आग लगने का समाचार उठता है और राजा अन्दर जाकर वन्दिनी सागरिका को बचा ले आता है। सागरिका पहचान ली जाती है और वासवदत्ता उसे गले लगाती है तथा उसे राजा को समर्पित करके देवी पर अधिष्ठित करती है। यहाँ यह नाटक समाप्त होता है।

रत्नावली नाटिका महाकवि कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्रम् से विशेष सादृश्य रखती है। जैसे मालविकाग्निमित्रम् में राजमहिषी धारिणी के पास नायिका मालविका का निक्षेप किया जाता है। उसी प्रकार रत्नावली में वासवदत्ता के पास सागरिका का निक्षेप होता है। दोनों में राजमहिषी ही नायक नायिका के संयोग में बाधा बनती है। दोनों में अन्ततः महिषी ही नायक और नायिका का मिलन कराती है।

रत्नावली नाटिका और श्री हर्ष की दूसरी नाटिका प्रियदर्शिका में भी विशेष साम्य, दिखायी पड़ता है। दोनों श्रृंगार प्रधान नाटिकायें हैं। वासवदत्ता का ईर्ष्या प्रकरण और आरण्यका तथा सागरिका का कारागार में बन्दी बनाया जाना भी समान है। रत्नावली में अमात्य यौगन्धरायण की योजना महाकवि भास के स्वप्नवासवदत्तम् में यौगन्धरायण का स्मरण कराती है। इस प्रकार रत्नावली के रचयिता पर भास और कालिदास का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। किन्तु इन सबके उपरान्त भी रत्नावली में पर्याप्त नावीन्य है।

**

संस्कृत साहित्य में मानवता

बैविध्यपूर्ण एवं विपुल ज्ञानसम्पदा से प्राणवान एवं समृद्ध संस्कृत साहित्य में जहाँ एक ओर अत्यन्त ललित, मनोहारी और रसात्मक काव्य का विशाल भण्डार भरा पड़ा है वहीं दूसरी ओर उससे भी वृहत्तर उस साहित्य का विपुल रत्नकोश है जो प्राणीमात्र पर दया, परोपकार, सत्य, अहिंसा, मानवता, कर्तव्याकर्तव्य, करणीय और अकरणीय को रेखांकित करता है। वास्तव में यही आचार संहिता और यही मानव मूल्य भारतीय संस्कृति का प्राण है, यही उसकी पहचान है, यही उसका वैशिष्ट्य है। वैदिक काल से लेकर अद्यतन अनेकानेक मनीषियों, चिन्तकों, तत्वज्ञों और कवियों ने उसे अपने–अपने शब्दों में रेखांकित किया है और वाणी दी है।

मानवता की भावना आर्य ऋषियों के उद्‌गारों में वारंबार मुखरित हुई। उन्होंने विश्व मंगल की कामना की और उच्च स्वर में गाया :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।

निःस्सदेह यह विश्व मंगल–कामना मानवता का चरम विन्दु है।

प्राणिमात्र सुखी हो, प्राणिमात्र नीरोग हों, सभी का कल्याण हो। कोई प्राणी दुःखी न हो। सभी जन अपनी कठिनाइयों को पार कर लें, सभी की अभिलाषा पूर्ण हों। सभी जन सर्वत्र सानन्द जीवन व्यतीत करें।

पुनश्च यह सुभाषित देखें :–

अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदःशतम्।।

पुत्रहीन लोग पुत्रवान हों, पुत्रवान जन पौत्रवान हों। निर्धन लोग धनवान हों जाय और सभी को सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त हो।

शरणागत को अभयदान देने वाले त्यागमूर्ति राजा शिवि कहते हैं:–

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

मुझे राज्य की कामना नहीं है, मुझे स्वर्ग की और मोक्ष की भी कामना नहीं है। मुझे केवल एक ही कामना है–वह है दुःख से पीड़ित प्राणियों के दुःख की समाप्ति।

यह है मानवता के उत्कर्ष का चरम विन्दु। त्यागमूर्ति महाराज रन्तिदेव भी यही इच्छा व्यक्त करते हैं:–

न कामये अहं गतिमीश्वरात् पराम् अष्टधियुक्ताम् अपुनर्भवम्वां।
आर्ति प्रपद्येऽखिल–देह–भाजाम् अन्तस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।।

योगवाशिष्ठ का यह सूक्त देखिये :–

अयं वन्धुरयं नेति गणनालघुचेतसाम्। उदार चरितानां तु विगतावर्णैव धीः। पुनः हितोपदेश में,

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

महाभारत में धर्म का सारांश वताते हुए परमधर्मिष्ठ विदुरजी कहते हैं:–

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

धर्म का, कर्तव्याकर्तव्य का, इतना सारभूत, इतना स्पष्ट और इतना संक्षिप्त निरूपण कहाँ मिलेगा ?

हे युधिष्ठिर, मैं तुम्हे धर्म का सार वताता हूँ। सुनो और हृदयंगम कर लो। जो भी आचरण या कार्य तुम्हारे प्रतिकूल हो अर्थात् तुम्हें हानि या पीड़ा पहुँचाये, वह दूसरों के प्रति कदापि न करें।

प्राणिमात्र पर दया का भाव रखना मनुष्य का धर्म है, चाहे वह सवर्ण हो, चाहे वर्णसंकर हो, पतित हो, पशु हो, या कीटयोनि हो।

कीटे पतंगे च पशौ दया कार्या तथा मृगे।
सर्वत्रैव दया कार्या सर्वकामफलप्रदा।।
वर्णोत्तमे वर्णहीने पतिते वर्णसंकरे।

पुनश्च यह सुभाषित देखिये,

दत्वा वासो विदस्याम रोगिणे रुक् प्रतिक्रियाम्।
तृषार्ताय जलं स्वादु, मृष्टमन्नं तु भुक्षये।।
पथिकाय यथावित्तं सर्वस्तरति दुष्कृतम्।।

वस्त्रहीन पथिक को यथाशक्ति वस्त्र देकर, रोगी को औषध देकर, प्यासे को पानी देकर और भूखे को अन्न देकर मनुष्य सारे पापों से छुटकारा पाता है।

शत्रु के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए ? इस पर चाणक्य की कुछ सूक्तियाँ उद्धृत करता हूँ :—

शत्रोपि न पातनीया वृतिः।
शत्रोपि सुतः सस्वा रक्षणीयः।।

शत्रु की भी जीविका नष्ट नहीं करनी चाहिये।

शत्रु का भी पुत्र यदि मित्रवत् व्यवहार करे तो उसकी भी रक्षा करनी चाहिये।

कारण्यादेव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।
रिपवो येन जायन्ते कारणं तत् परित्यजेत।।

शत्रु और मित्र किसी कारण से ही बनते हैं। जिस कार्य या कारण से शत्रु बनते हों उसे त्याग देना चाहिये।

मानव समाज के लिये आदर्श आचरण का मानदण्ड निरूपित करने वाला यह सुभाषित देखिये :—

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या, चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय।
परोपकाराय वचांसि यस्य, वन्द्यस्त्रिलोकी तिलकः स एव।।

जिस व्यक्ति की धनसम्पदा दान के लिये है, जिसकी विद्या सुकृत करने के लिये है, जो परब्रह्म के ज्ञान हेतु चिन्तन करता रहता है, जिसके वचन परोपकार के लिये हैं, वह सचमुच सारे जगत का वन्दनीय और तिलक स्वरूप है।

उच्च मानवीयगुणों को उद्घोषित करता हुआ महाराज भर्तृहरि का यह सुभाषित श्रवणीय हैः–

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न न तु कंकणेन।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन।।

कानों की शोभा कुण्डलों से नहीं होती, श्रुत (ज्ञान) से होती है। हाथों की शोभा कंगनों से नहीं, दान से है और महान दयालु पुरुषों का शरीर चन्दन से नहीं, अपितु उनके परोपकार से उद्भासित होता है।

भर्तृहरि पुनः कहते है :–

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रबालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहिते सुकृताभियोगाः।।

सूर्य स्वयं ही कमल को विकसित करता है। चन्द्रमा स्वयं कैरवों को प्रफुल्ल करता है। जल–वृष्टि के लिये बादलों से किसी को याचना नहीं करनी पड़ती। संत–जन स्वयमेव परहित में लगे रहते हैं।

आर्जवं चानृशंस्यं च दम इन्द्रियनिग्रहः
एष साधारणं धर्मं चातुर्वर्ण्य–अब्रवीन्मनुः।।

ऋजुता, सरलता, दया तथा मन और इन्द्रियों का संयम मनु महाराज कहते हैं कि चारो वर्णो के लिये यही सामान्य धर्म है।

वयोवृद्ध जन वन्दनीय हैं, आदर के पात्र हैं। किन्तु उन्हें धर्मपथगामी अवश्य होना चाहिए, और धर्म सत्य पर आधारित हो, अन्यथा वह धर्म नहीं है और सत्य अवश्य ही छल से रहित होना चाहिए।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति, सत्यं न तद् यच्छलमभ्युपैति।

पुनः मानवता का यह उदात्तस्वरूप देखिये :–

मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति।।

मानवता को परिभाषित और प्रतिपादित करने वाले इस प्रकार के अधिसंख्य सारभूत वचन अर्थात् सुभाषित संस्कृत साहित्य में, श्रुतियों, पुराणों, रामायण, महाभारत और लौकिक संस्कृत में भरे पड़ें हैं। उनका पठन–पाठन और दैनन्दिन जीवन में अनुपालन आज के मानवमूल्यहीन, ह्रासोन्मुख समाज के लिये निश्चय ही पुनरुद्वार के द्वार खोल सकता है।

**

संस्कृत साहित्य में सुभाषित

किसी कवि ने कहा था :

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।।

इस पृथ्वी पर तीन ही रत्न हैं। अन्न, जल और सुभाषित। मूर्ख लोग अज्ञानवश पत्थर के टुकड़ों को रत्न के नाम से पुकारते हैं।

और यदि आपको सुभाषित रत्नों की विपुल और महार्घ राशि के दर्शन करने हों तो संस्कृत साहित्य के कोषागार में प्रवेश कीजिए, जहाँ सहस्रों कोहिनूरों की प्रखर प्रभा से भास्वर सुभाषित रत्नों की शैलराजियाँ दूर–दूर तक फैली हुई हैं। संस्कृत साहित्य में सुभाषितों, चमत्कार पूर्ण छन्दों और अनूठी वक्रोक्तियों का अक्षय भण्डार भरा है। पुरातन काल से लेकर अद्यावधि असंख्य ज्ञात और अज्ञातनामा चिन्तकों, नीति विशारदों और रससृष्टि के धाता सुकवियों ने इस भण्डार में श्री वृद्धि की है और इसे अपनी वाणी से सजाया है। चाहे आचार और धर्म के क्षेत्र में हो, अथवा नीति के विषय पर हो, अथवा श्रृंगार या करुण रस के परिपाक में हों, इन सरस्वती पुत्रों ने जो एक बार कह दिया, वह उस विषय पर प्रमाण हो गया। अन्तिम वाक्य (दि लास्ट वर्ड) हो गया। उससे प्रखरतर उक्ति पुनः नहीं कही जा सकी। और ये सूक्तियां–ये सुभाषित अपनी शाश्वत जीवंतता के कारण साहित्य प्रेमियों के, और जन जन के कंठहार बन गये। जो चिरनवीन है, जो भी उदात्त हैं, महनीय है, लोक रंजक है, लोकशिक्षक है, प्रेरक है, जो शाश्वत सत्यों और मूल्यों की धरोहर है, वह सुभाषितों में आबद्ध है।

सुभाषित को स्थूल रूप से इस प्रकार परिभाषित किया गया है:–

पुराणेषु इतिहासेषु तथा रामायणादिषु।
वचनं सारभूतं यत् तत् सुभाषितमुच्यते।।

किन्तु यह परिभाषा सुभाषित के बहुआयामी और चिर रमणीय, शाश्वत, कालजयी, हृदयस्पर्शी, मार्गदर्शक, नित्य हृदयहारी स्वरूप का सम्यग् बोध नहीं कराती। सुभाषित चाहे वे अमरुक, हल, भर्तृहरि, जयदेव राजशेखर या पंडितराज जगन्नाथ के मुक्तक के रूप में हों, अथवा कालिदास, माघ और भारवि के महाकाव्यों में प्रोत मणियों के रूप में, युगों से सहृदयों की सौन्दर्यतृषा को तृप्त करते रहे हैं, जिज्ञासुओं को सत् का बोध कराते रहे हैं, सामान्य जनों को नीति और आचरण का मार्ग बताते रहे हैं और व्याकुल, खिन्न जगत के तीन परितापों से पीड़ित जनों का मनोरंजन करते रहे हैं।

सुभाषितों के अनेकानेक संग्रह प्राचीन काल से लेकर अब तक प्रकाशित हुए हैं– जयबल्लभ का वज्जालग्गम्, हल की प्राकृत में रचित गाथा सप्तशती, विद्याकर का सुभाषित रत्नकोष (1100 ई.), बंगाल के श्रीधरदास का सदुक्तिकर्णामृत (1200 ई.), जल्हण कवि की सूक्ति मुक्तावली (1257 ई.) वृहत् सुभाषित संग्रह, शारङ्गधर पद्धति, बल्लभदेव की सुभाषितावलि, सुभाषित रत्न भण्डागारम् आदि। किन्तु भिन्नरुचिर्हि लोकः, इस न्याय के अनुसार मुझे जो रूचिकर लगा उसे इस संग्रह में आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। समान रूचि वाले सहृदय बन्धुओं को यह अवश्य प्रीतिकर होगा। तो पहले देखिये कुछ श्रृंगार सूक्तियाँ :

सुन्दरी सरोवर के जल में स्नान के लिए खड़ी है। उसके मुख मण्डल, उसके गले की मुक्तावली, और उसके उरोजों का प्रतिबिम्ब जल में पड़ रहा है। कवि कहता है : प्रिये ! जल में दिखने वाली यह परछायीं तुम्हारे मुखमण्डल की परछायीं नहीं है और न ही यह कण्ठहार की छाया है, और न यह तुम्हारे उरोजों का प्रतिबिम्ब है। यह तो चन्द्रमा है, जो तुम्हारे मुख के सौन्दर्य तक न पहुँचकर लज्जा से गले में दो हेम घट मोती के हार से बांधकर पानी में डूब मरा है।

नेयं ते मुखमण्डलप्रतिकृतिश्छाया न हारोद्भवा।
वक्षोजौ प्रतिबिम्बितौ न सलिले जाने हि सत्यं प्रिये।।
अप्राप्याननसौभगं तव शशी मुक्तांचितैर्दामभिः।
कंठे हेमघटद्वयं परिदधत् पानीयमध्यं गतः।।

एक दूसरी उक्ति देखिये :–

विरहिणी बाला प्रिय के वियोग में जल रही है। हृदय में तीव्र दाह है। अंग–अंग जल रहे हैं। नयनों से अश्रु प्रपात फूट पड़ रहा है। आविरल अश्रुधारा उसके वक्ष को भिगोती रहती है। कवि उत्प्रेक्षा करता है।

अंगानि मे दहतु कान्तवियोगवह्निः
संरक्ष्यतां प्रियतमो हृदि वर्तते यः।
इत्याशया शशिमुखी गलदश्रवारि,
धाराभिरुष्णमभिषिंचति हृत्प्रदेशम्।।

मेरे शरीर में लगी हुई प्रिय के वियोग की अग्नि सारे अंगों को भले ही जला दे। पर हृदय में बैठे हुए प्रियतम को तो बचाना ही है। वह इस अग्नि के ताप से जल न जावें, इस हेतु वह हृदय पर अविरल अश्रुधारा बरसा रही है। कितनी मार्मिक और चमत्कारपूर्ण उक्ति है !

कन्दुक क्रीडा में रत सुन्दरी का एक चमत्कृति पूर्ण वर्णन सुनिये, जिसमें कवि क्रीडा के व्याज से कामिनी के सुडौल, पुष्ट पयोधरों और कमलाकृति नेत्रों की अत्यन्त सहजभाव में सराहना करता है।

पयोधराकारधरो हि कन्दुकः करेण रोषादभिहन्यते, मुहुः।
इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं स्त्रियः प्रसादाय पपात् पादयोः।।

कन्दुक सुन्दरी के पयोधरों के आकार का है और उनकी समता करना चाहता है। इस कारण वह उसे बार बार हाथ से मार रही है। कन्दुक की यह प्रताड़ना देखकर केश में लगा हुआ कमल पुष्प डर गया और सुन्दरी के पैरों पर गिर पड़ा, क्योंकि वह उसकी नयनों की आकृति का था।

वर्षा पर एक उत्कृष्ट श्रृंगारिक उत्प्रेक्षा देखें, जिसमें कल्पना की बहुत ऊँची उड़ान है।

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः।

धारानिपातैः सह किन्तु वान्तः चन्द्रोऽयम् इत्यार्ततरंररास।।

बादल ने वर्षा की भीगी रात में अभिसार पर जाती हुई नायिका का मुख, बिजली के चमकने पर अर्थात् अपने विद्युत नेत्रों से देखा तो उसे यह लगा कि कदाचित् चन्द्रमा मेघ वृष्टि में नीचे पृथ्वी पर गिर गया है। यह सोचकर वह आर्तस्वर में रोने लगा।

घनघोर वर्षा, बिजली का कौंधना, बादलों का आर्तस्वर और इस मौसम में अभिसार को निकली साहसी परम सुन्दरी नायिका जिसके मुख को देखकर चन्द्रमा की भ्रान्ति हो जाय – इन सबका कैसा चमत्कृति पूर्ण वर्णन है।

गाथा शप्तशती में सद्यः स्नाता सुन्दरी और उसके कटिचुम्बी, जलस्रावी केशों पर मुझे एक अनूठी उत्प्रेक्षा मिली, जिसका संस्कृत रूप इस प्रकार है :

प्राप्तनितम्बस्पर्शाः स्नानोत्तीर्णायाः श्यामलांग्याः।

जलबिन्दुकैः चिकुराः रूदन्ति वन्धस्य इव भयेन।।

सद्यः स्नाता के लम्बे केशों से जल की बूंदें टपक रही हैं। उसके खुले केशों ने एक बार नितम्बों के स्पर्श का सुख क्या पा लिया, अब वे जूड़े में बांधे जाने के भय से रो रहे हैं।

एक सान्ध्य वर्णन देखिये जो उपमा सम्राट कालिदास की लेखनी से निस्सृत हुआ है :

संध्या की बेला है। प्राची में चन्द्रोदय हो रहा है। उगते शशी ने अपने करों से तिमिर राशि रूपी केशों को समेट लिया है। पृथ्वी तल के सरोवरों में कमल बन्द हो रहे हैं। निशा का मुख जयोतिर्मय हो रहा है। प्रकाश से खिल रहा है। कवि कहता है :–

अङ्गुलीभिः संनिमृह्य केशसंचयं तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृत सरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी।।

निशापति चन्द्रमा अपनी अंगुलियों में तिमिर रूपी कुन्तल राशि को समेट कर निशा सुन्दरी के मुख का चुम्बन करता प्रतीत होता है। आनंदातिरेक में निशा सुन्दरी ने सरोजनयन मूँद लिये हैं।

इसी प्रकार सूर्योदय पर एक चमत्कृतिपूर्ण और अंनूठी सूक्ति मुझे मिली। सूर्य के उदित होने पर कमल कोष खुल जाते हैं। उनमें बन्द भौंरे फिर बाहर आ जाते हैं। साथ साथ रात्रि बिताकर प्रेमी युगल प्रातः सूर्योदय पर अलग हो जाते हैं। इस सामान्य तथ्य को कवि एक कलात्मक और चमत्कार पूर्ण अभिव्यक्ति देता है।

पुरूहूत दिगङ्गना प्रसूतं रविमुद्दामसुतं चिरात् प्रपेदे।
अलयो नलिनीदलात् विमुक्ताः प्रियबाहुद्वयबन्धनात् नवोढाः।।

जब प्राची ने अन्ततः प्रतापी पुत्र सूर्य को जन्म दिया तो इस खुशी के अवसर पर सारे बन्दियों को मुक्त किये जाने के आदेश हुये। कमलों में बन्द भौंरे और पतियों के भुजपाश में बँधी पत्नियाँ भी मुक्ति पा गयीं।

एक भक्तजन की सूझ देखिये। व्रज का बिगड़ा हुआ बालक कृष्ण माखन चोरी के लिए कुख्यात है। वह भागा फिरता है। उसे छिपने के लिए स्थान चाहिए – ऐसा स्थान जहाँ अंधेरा हो। भक्त कहता है –

क्षीरसारमपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनंत्वया।

मानसे मम नितान्ततामसे नन्दनन्दन कथं न निलीयसे।।

हे नन्द सुअन, माखन चुराकर यदि तुम छिपने की जगह ढूँढ रहे हो, तो मेरे मानस में क्यों नहीं छिप जाते ? ऐसा तमाच्छादित स्थल तुम्हें और कौन सा मिलेगा।

अनुप्रास छटा से मंडित यह नीति उक्ति देखिये।

मनो मधुकरो मेघो मानिनो मदनो मरूत्।

मा मदो मर्कटो मत्स्यो मकारा दश चंचलाः।।

मन, मधुकर, मेघ, मानिनी, मदन, मरुत्, मा (लक्ष्मी) मद, मर्कट और मत्स्य ये दशमकार चंचल हैं।

संस्कृत सुभाषितों में बहुत सी अन्योक्तियाँ भी हैं जिनमें कवि अपने कथ्य को सीधे न कहकर किसी प्रतीक के माध्यम से कहता है। भृर्तहरि की एक ललित प्रखर अन्योक्ति देखिये--

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा

यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।

मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण

कंकोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनास्युः।

हम उस सुवर्ण या रजत पर्वत को क्या करें जिस पर स्थित वृक्ष वृक्ष ही रह गये। हम तो मलय पर्वत को मानते हैं जिसके सम्पर्क में रहने वाले कंकोल, नीम और कुटज जैसे कडुवे तरू भी चन्दन बन गये। लक्ष्मी पुत्रों की सेवा से कोई लाभ नहीं। चन्दन रूपी सन्तों का सत्संग करो। उन्हीं का आश्रय सार्थक होगा।

अन्योक्ति का एक और उदाहरण देखिये जिसमें दुर्दिन को प्राप्त हुये किसी पूर्व महादानी की सराहना और आश्वासन का संमिश्रण हैः

आश्वस्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्तं
उद्दामदावविधुराणि च काननानि।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यदि जलद सैव तवोत्तमा श्रीः।।

हे घन ! भीषण गर्मी से जलते हुए पर्वतों और वनों को जलवृष्टि से आश्वस्त करके और सहस्रों नदियों, सरोवरों को जल से पूरित करके अब यदि तुम रिक्त हो गये हो तो कोई शोच नहीं। यही तो तुम्हारी शोभा है।

यह अन्योक्ति अतीव सहज होते हुए भी प्रचुर अभिव्यंजना पूर्ण है।

खद्योतो द्योतते तावत् यावन्नोदयते शशी।
उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः।।

खद्योत तभी तक चमकते फिरते हैं जब तक चन्द्रमा आकाश में उदित नहीं होता; और जब सूर्य का उदय होता है तो न खद्योत दिखायी पड़ते हैं और न चन्द्रमा।

प्रतापी तेजस्वी महापुरुष का अभ्युदय होने पर साधारण प्रतिभा वाले व्यक्ति फीके पड़ जाते हैं।

घर आये हुए अतिथि पथिक पर रीझी नायिका का संकेत—निमंत्रण देखिये—

वह कहती है, 'अतिथिवर, घर में यहाँ मेरी सास जी सोती हैं, यहाँ मैं सोती हूँ, यहां परिवार के अन्य सदस्य शयन करते हैं। हे पथिक, तुम्हें रात में ठीक दीखता नहीं। देखना रात को मेरे बिस्तर पर न गिर पड़ना।

अत्र निमज्जतिश्वश्रूः अत्राहं अत्र परिजनः सकलः।
पथिक रात्र्यन्धक ! मा मम शयने निमङ्क्ष्यसि।।

पड़ोसी के प्रति आसक्त नायिका की इसी प्रकार की एक अनूठी उक्ति सुनिये –

बहलतमा हतरात्रिः अद्य प्रोषितः पतिः गृहं शून्यम्।
तथा जागृहि प्रतिवेशिन् ! न यथा वयं मुष्यामहे।।

बड़ी काली रात है। आज मेरे पति बाहर गये हैं और घर सूना है। हे पड़ोसी, तनिक जागते रहना जिससे कि हमें कोई लूट न ले।

यह श्रृंखला बहुत लम्बी है और स्थान बहुत सीमित है। अतः मधुरेण समापयेत्, इस न्याय के अनुसार दो अनूठी हास्य उक्तियों के साथ अपना लेख समाप्त करूँगा।

ज्ञानाम्बुधेः परं पारं गता किं न सरस्वति ?
अद्यापि मज्जनभयात् तुम्बीं वहसि वक्षसि।।

माँ सरस्वती ! कदाचित् आप अब तक ज्ञान के महासागर को पार नहीं कर पायीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि उस सागर में डूबने के भय से ही आप अपने वक्ष पर यह तुम्बी (वीणा) लटकाये रहती हैं ?

एक कवि जी राजा के दरबार में पहुँचे और यह श्लोक पढ़ने लगे। सारे दरबारी स्तब्ध और भयभीत सांस रोके बैठे रहे, जब तक कि कवि जी ने श्लोक का चतुर्थ चरण पढ़कर सबको हँसा नहीं दिया।

यथा यथा ते सुयशो विवर्धते।
सितां त्रिलोकीमिव कतुर्मद्यतम्।
तथा तथा मे हृदयं विदीर्यते
प्रियालकावलि धवलत्व शंकया।

हे राजन् ! जैसे–जैसे आपका सुयश बढ़ रहा है और सारे जगत को धवल कर रहा है वैसे–वैसे मेरा हृदय फटता जा रहा है। मुझे डर लग रहा है कि इस धवलज्वार में मेरी प्रिया की सुन्दर अलका राशि श्वेत न हो जाय।

**

मैत्री

मित्रों और मैत्री की चर्चा चलते ही सहजरूप से मन में एक अतीव कोमल, स्निग्ध और स्फूर्तिप्रद भाव का अभ्युदय और संचार होता है तथा एक ऐसी मूर्ति नेत्रों के समक्ष साकार हो उठती है जो अपनी ही छाया और पूर्णतः आत्मस्वरूप प्रतीत होती है; जो हमारे सुख और दुःख की सहचरी, हमारी विपत्ति और दुर्दिन का सम्बल, हमारी गुह्यतम महत्वाकांक्षाओं और अभिलषितों की सहभागी होती है। इतिहास मित्रों के प्रगाढ़ प्रेम और बलिदान की गाथाओं से भरा पड़ा है। सहज स्वार्थहीन मैत्री ऊँच, नीच सम्पन्न और विपन्न का भेद नहीं जानती। त्रेता युग में मर्यादा पुरुष राम ने निषादराज को, अर्धमानुष कपिवर्ग के सुग्रीव को, और राक्षसकुलोद्भूत विभीषण को अपना मित्र बनाया। द्वापर में सूतपुत्रकर्ण और हस्तिनापुर नरेश अभिजात्य दुर्योधन की अटूट मैत्री, अकिंचन सुदामा और द्वारकाधीश महाराज कृष्ण की भित्रता, पुनः दुर्धर्ष वीर अर्जुन और योगिराज कृष्ण का सखाभाव मैत्री के क्लासिक आदर्श हैं। मित्र की जो कल्पना भारतीय संस्कृति ने की थी, वह इस प्रकार है :

कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणी।
अविचार्य प्रियं कुर्यात् तन्मित्रं मित्रमुच्यते।।

शरीर पर जब कोई आसन्न आघात होने को होता है तो हाथों से यह कहना नहीं पड़ता, 'उठो मुझे बचाओं।' आंखों पर जब कोई चोट लगने की आशंका होती है तो पलकों को कोई आदेश नहीं देता, कोई त्राहि माम्' नहीं पुकारता। हाथ स्वतः तत्काल शरीर की रक्षा के लिये उठ जाते है। पलकें अपने ऊपर चोट को लेकर नेत्र पुतलियों को अपनी गोद के कवच में बन्द कर लेती हैं। मित्र का आचरण अपने सखा के लिये इसी प्रकार का होता है।

कराविव शरीरस्य..........................

एक सुभाषित में मित्र इस अक्षरद्वय को उस रत्न की संज्ञा दी गयी है जो शोक का शत्रु, भय का त्राण और प्रीति एवं विश्वास का भाजन है :

शोकारीव भयत्राणं प्रीतिविश्रंभभाजनम्।

केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्।।

एक अन्य सुभाषित में सन्मित्र के लक्षणों को अधिक विस्तृतरूप में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :

पापान्निवारयति योजयते हिताय।

गुह्यान् गूहति गुणान् प्रकटी करोति।

आपद्गतं न जहाति ददाति काले

सन्मित्रलक्षणभिदं प्रवदन्ति प्रज्ञाः।।

जो दुष्कर्मो से हमें दूर रखता है और सत्कर्मों, हितकर कार्यों में प्रवृत्त करता है, जो हमारे गोपनीय कार्यों या वस्तुओं को गुप्त रखता है, जो हमारे गुणों को उजागर करता है : जो आपतकाल में हमारा साथ नहीं छोड़ता और आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता भी करता है; विद्वज्जन उसी को मित्र कहते हैं।

यही बात प्रकारान्तर से एक अन्य सुविख्यात सुभाषित में कही गयी है :

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।

राजद्वारे स्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।

उत्सव में अर्थात् आपके आनन्द और उल्लास में, व्यसन में अर्थात् आपके आपत्काल में, दुर्भिक्ष में अर्थात् देशव्यापी अकाल पड़ने पर, जब राष्ट्र में विप्लव हो रहा हो अर्थात् अराजकता फैली हो

और कुछ भी सुरक्षित न हो, राजदरबार में अर्थात् शासक से सामना होने के समय, और अपने सगे संबंधी के निधन पर जब आप शोक सागर में डूब रहे हों, इन स्थितियों में जो आपका साथ निभाता है, और आपको सहारा और नैतिक बल देता है, वही वन्धु है–वही मित्र है।

परमभोगी और परमयोगी महाकवि भर्तृहरि ने उत्कृष्ट मित्रता और मित्रों द्वारा एक दूसरे के लिए समग्र वलिदान का एक अतीव रोचक चित्र प्रस्तुत किया है।

पानी ने दूध से मित्रता की तो दूध ने उसे अपने सारे गुण दे दिये और उसे अपना अभिन्न बना लिया। दोनों में कोई अन्तर न रहा। पानी भी दूध के भाव बिका। उसे वही सम्मान, वही मूल्य मिला। जब दूध पर विपत्ति आयी और उसे आग पर तपाया जाने लगा तो मित्र जल ने पहले अपने प्राणों की बलि दी। मित्र को जलता देख दूध उबल पड़ा और आग में कूदने को उछला। पानी के छीटे पड़ते ही अर्थात पुनः अपने मित्र का संयोग पाकर वह शान्त हुआ। यह है सच्चे मित्रों के अन्योन्य बलिदान का आदर्श।

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा तेऽखिलाः।
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।।
गन्तुं पावकमुनमनस्तदभवत् दृष्ट्वा तु मित्रापदम्।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी।।

दुर्भाग्य की बात है कि अब 'मित्र' और मैत्री शब्द शब्दकोशों तक सीमित रह गये हैं। भूलोक में वे दिखायी नहीं पड़ते। आपके गुणों या स्नेह से आकृष्ट होकर निस्वार्थ मैत्री करने वाला व्यक्ति आज एक दुर्लभ प्राणी है। आज हम इक्कीसवीं शती में प्रवेश कर गये हैं। मुझे भय है कि इस शती के लिए मित्र एक Endangered species अर्थात् लुप्त–प्राय प्राणी घोषित हो जायगा। विचारणीय है

कि इस लुप्तप्राय प्राणी को विलुप्त होने से कैसे बचाया जाय। कार्वेट अभयारण्य या दुधवा अभयारण्य बनाकर तो इसकी रक्षा की नहीं जा सकती। समाज के श्रेष्ठजन, अग्रणी जन ही अपने आचरण द्वारा खोये हुये नैतिक मूल्यों की पुनस्थापना कर सकते हैं क्योंकि:

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेव इतरेजनाः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

वर्तमान समय में, जिस प्रकार के मित्र सड़क पर बिकने वाली आइसक्रीम की भाँति सुलभ हैं, उन्हें इस सुभाषित में परिभाषित किया गया है :

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षेप्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुंभं पयोमुखम्।।

सामने मीठी बातें करने वाले और परोक्ष् में अहित करने वाले मित्र उस विषकुंभ के समान है जिसमें ऊपरी तल पर दिखावटी दूध रख दिया गया हो।

इसी प्रकार :

रहस्यभेदो याञ्चा च नैष्ठुर्यं चलचित्तता।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन् मित्रस्य दूषणम्।।

जो मित्र गोपनीयता को भंग करे, कुछ पाने की इच्छा रखता हो, निष्ठुर और चंचल चित्त वाला हो, क्रोधी और असत्यवादी हो, अथवा द्यूत क्रीड़ा के लिये प्रेरित करे, वह मित्र नहीं है।

महाराज भर्तृहरि ने उत्तम और अधम जनों की मैत्री पर एक बहुत सुन्दर टिप्पणी की है :

आरंभगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वी पुरा वृद्धिमतीचपश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्ध परार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्।।

उत्तमजनों की पारस्परिक मैत्री अपराह्ण की छाया की भाँति पहले छोटी से प्रारंभ होकर फिर उत्तरोत्तर बड़ी होती जाती है। अधमजनों की स्वार्थ–प्रेरित मित्रता पूर्वान्ह की छाया की भाँति पहले बहुत बड़ी और फिर क्रमशः दोपहर तक छोटी होती जाती है।

**

महात्मा गाँधी की राम-राज्य अवधारणा

विभिन्न युगों में भारत भू पर अवतरित होने वाले युग पुरुषों की श्रृंखला में अवतीर्ण बन्द्यपाद ऋषि–कल्प मोहनदास करमचन्द गाँधी अपने कृतित्व और वर्चस्व से राष्ट्रपिता की पदवी पर आरुढ़ हुये और गुरुवर रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा 'महात्मा' नाम से सम्बोधित किये गये। दासता के पाश में बंधे हुये और अन्धकूप में पड़े हुये से दिग्भ्रान्त भारतीयों को आलोक–पथ दिखाकर उन्हें स्वतन्त्रता की खुली और स्वच्छवातपूरित विजय भूमि में ले आने का श्रेय मुख्यतः गाँधी जी को है। आज स्वतन्त्रता की खुली हवा में साँस लेने वाले और संसार के स्वाधीन लोगों की पंक्ति में खड़े 103 करोड़ भारतीयों का रोम–रोम उनका कृतज्ञ है। इस महापुरुष को हम शिरसा नमन करते हैं।

स्वतंत्रता संग्राम के लम्बे संघर्ष में महात्मागाँधी ने बारम्बार राम राज्य का उल्लेख किया। उनके व्याख्यानों में बार–बार राम–राज्य का नाम आया। तत्कालीन विदेशी शासन को इंगित करते हुये गाँधी जी ने कहा, "यह वर्तमान शासन राम–राज्य नहीं है। यह रावण राज्य है। इस रावण राज्य में हम भारतीय पीड़ित हैं।"

राजकोट के महाराज को सम्बोधित करके एक बार उन्होंने कहा "आप राजकोट में राम–राज्य स्थापित करें, यहीं मेरी प्रार्थना है।"

महात्मा गाँधी ने स्वराज की कल्पना राम–राज्य के रूप में ही की थी। 26 दिसम्बर, 1924 को शाहपुर नगर पालिका द्वारा आयोजित अपने अभिनन्दन समारोह में गाँधी जी ने सुस्पष्ट कहा, "हमारा स्वराज्य राम–राज्य ही होगा।"

निरन्तर भारत के कल्याण और उसकी समस्याओं का चिन्तन करते करते गाँधी का यह विचार पुष्ट हो गया था कि इस देश में जो

दुख है, दारिद्र्य है, उत्पीड़न है, जो आर्थिक वैषम्य है, जो अनाचार है, जो जाति के नाम पर, और धर्म के नाम पर संघर्ष हैं, वह रावण राज्य रूपी अंग्रेजी शासन की देन है। स्वराज प्राप्त होने पर इस सबको समूल नष्ट करके हम राम–राज्य की स्थापना करेगें। दासता के पाश में बंधे हुये, निज भाग्य निर्माण के अधिकार से वंचित, अपने विवेक से निर्णय लेने में अवरुद्ध, पग-पग पर विदेशी शासकों से अपमानित कोटि-कोटि भारतीय और स्वयं गाँधी जी यह जानते थे कि यह सब कुछ परतंत्रता–प्रभूत है। वे उत्सुकता से स्वराज और तदनुवर्ती राम–राज्य की प्रतीक्षा करते रहे।

वह राम–राज्य कैसा होगा, उसका क्या स्वरूप होगा ? राम–राज्य में राजा किस प्रकार आचरण करेगा ? प्रजा का आचरण और व्यवहार कैसा होगा ? उनका जीवन कैसा होगा ? राम–राज्य में क्या क्या सुलभ और क्या क्या दुलर्भ होगा ? व्यवसायी कैसे होंगे ? विद्वान कैसे होंगे ? स्त्रियाँ कैसी होगी ? पुरुष कैसे होंगे ?

राम राज्य भारतीय जन मानस में बहुत ऊँचे, समादृत और लोकप्रिय पीठ पर प्रतिष्ठित है। राम–राज्य की परिकल्पना अपने अन्दर वह सब कुछ संजोये हुए है जो किसी सुव्यवस्थित, प्रजावत्सल, लोक कल्याणकारी, धर्मोन्मुख शासन में अभीप्सित है। राम–राज्य आदर्श शासन व्यवस्था का और सुखी, सम्पन्न अनुशासित तथा धर्म परायण समाज का पर्याय है। राम–राज्य का उल्लेख आते ही दो प्रकार की कल्पना किसी भी समान्य जन के मन पर कौंध जाती है। प्रथमतः तो कोटि–कोटि जनों के लिए राम–राज्य का अर्थ है मर्यादा, आचार, और पराक्रम की आदर्श मूर्ति श्री राम का राज्य। दशरथ पुत्र श्री राम सदाचार और मर्यादा के आदर्श रूप हैं। बाल्मीकि रामायण के अनुसार वे रूप वान, परम पराक्रमी, प्रशान्तात्मा, मृदुभाषी, बुद्धिमान और वीर्यवान हैं। वे धर्मज्ञ और इन्द्रियों को वश में रखने वाले और वाह्यान्तर पवित्र हैं। न्याय में वे वृहस्पति के समान हैं, तेज में इन्द्र के समान, और नैतिकता में वरुण के समान हैं। जो प्राणवध के

अधिकारी हैं, उनका वे बध करते हैं और अवध्य का वध नहीं करते। एक ओर वे रावण और कुम्भकरण जैसे अजेय राक्षसों को पराजित करने और उनका संहार करने की क्षमता रखते हैं, दूसरी ओर वे निषाद, भालू और बानरों जैसे अस्पृश्यों और वनचारियों को गले लगाते हैं। ऐसे राम का राज्य या शासन राम राज्य था। अधिसंख्य लोगों के लिए इतना कह देना प्रर्याप्त है। राम–राज्य का और अधिक विवेचन और विवरण उन्हें नहीं चाहिए। जहाँ राजा (शासक) इस प्रकार का है, वहाँ सब कुछ सुख, समृद्धि, शान्ति, अनुशासन, व्यवस्था, धर्माचरण स्वतः प्रतिष्ठित है। राम जैसे आदर्श राजा (शासक) के व्यक्तित्व में ही राम–राज्य (जो आदर्श समाज और व्यवस्था का प्रर्याय है) की कल्पना अन्तर्निहित है।

बाल्मीकि रामायण का आरम्भ ही महर्षि बाल्मीकि की एक जिज्ञासा से होता हैं जिसमें वे देवर्षि नारद से पूँछते है कि –

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चप्रियदर्शनः।।
आत्मवान् को जितक्रोधी द्युतिमान् कोऽनूसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।।
वा.रा. 1. 1. 2–4.

कौन ऐसा गुणवान्, बलवान, धर्मतत्वतेत्ता, कृतज्ञ, सत्यवादी, दृढ़.प्रतिज्ञ, समस्त प्राणियों का हितसाधक, विद्वान, सर्वांगसुन्दर, मनोजित क्रोध को विजित करने वाला, किसी की भी निन्दा न करने वाला और युद्ध में देवों को भी भयभीत कर देने वाला व्यक्ति है ? बाल्मीकि के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए नारद ने कहा कि वास्तव में ये गुण बड़े दुर्लभ हैं, किन्तु मैं बहुत सोच समझकर आपको इन

गुणों से युक्त एक व्यक्ति का परिचय देता हूँ। इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न महापुरुष राम एक ऐसे ही व्यक्ति हैं, जो अपनी चारित्रिक शक्ति से विश्वविख्यात हैं–

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।

मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।

नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् वशी।। (वा.रा. 2. 2. 53.)

राम के इन्हीं सहज गुणों ने समस्त भारतीय जनता को एक मत से उन्हें अपना शासनाध्यक्ष बनाने के लिए प्रेरित किया। जनता ने दशरथ से कहा जो शत्रुंजय, सर्वसमर्थ और सर्वांगसुन्दर आपके ज्येष्ठ पुत्र राम हैं, हम उन्हें युवराज पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं।

रामभिन्दीवरश्यामं सर्वशत्रुनिबर्हणम्।

पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम्।।

(वा.रा. 2. 2. 53)

राम के व्यक्तित्व का यही सर्वजन–सम्मत और प्रशस्य नैतिक पक्ष, राम–राज्य का मूलाधार है। 'रामो विग्रहवान् धर्मः।' राम साक्षात् धर्म ही हैं।

प्रकारान्तर से दूसरे प्रकार का भाव जो राम राज्य शब्द से जन साधारण के मन में संचरित होता है, वह है राम के राज्य अर्थात् शासन में समाज और प्रशासन की सुव्यवस्था, भौतिक सुख, समृद्धि, सदाचार और नैतिकता।

2 जनवरी 1925 को दोहद नगर में एक महिला सभा को सम्बोधित करते हुये गाँधी जी ने कहा था, "राम–राज्य में सारी प्रजा सुखी थी। सभी को मध्यान्ह और सायंकाल का भोजन सुलभ था।

स्त्री और पुरुष केवल सच बोलते थे। व्यवसायी परस्पर विश्वास करते थे। पुरुष–जन पवित्र दृष्टि वाले थे।''

गांधी जी के इन वाक्यों द्वारा सूत्र रूप में यह इंगित किया गया था कि राम राज्य में प्रजा भौतिक सुखों से संपन्न थी। दारिद्र्य या अर्थ संकट नहीं था। लोगों में पारस्परिक सद्भाव था। व्यक्ति सदाचारी थे। वे सत्य बोलते थे। नैतिकता अपने उत्कर्ष पर थी।

महात्मागाँधी की राम–राज्य की कल्पना निश्चय ही रामायण में वर्णित राम–राज्य के स्वरूप से प्रभावित थी। संत कवि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस के उत्तर काण्ड में और आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण के युद्धकाण्ड में राम–राज्य का किंचित वर्णन किया है। स्कन्दपुराण के ब्रह्मखण्ड में भी विस्तार के साथ रामराज्य का वर्णन किया गया है।

रामराज्ये तदा लोकाः हर्षनिर्भरमानसाः।
वभूवुर्धनधान्याढ्याः पुत्रपौत्रयुता नराः।।
नाधयो व्याधयश्चैव रामराज्ये नराधिप।
नार्यः पतिव्रताश्चासन् पितृभक्तिपरा नराः।।
द्विजावेदपरा नित्यं क्षत्रिया द्विजसेविनः।
कुर्वते वैश्यवर्णश्च भक्तिं द्विजगवां सदा।।
विधवा नैव काप्यासीद् लभ्यते न सभर्तृका।
नावज्ञां कुर्वते केऽपि मातापित्रोगुरोस्तथा।।
नापवादपरो लोके न दरिद्रो न रोमवान्।
न स्तेनो द्यूतकारी च मैरेयी पापिनो नहि।।

राम के राज्य में सामान्य जन सुखी थे। धन धान्य संपन्न थे। पुत्र पौत्र वाले थे। स्वस्थ और व्याधि–मुक्त थे। स्त्रियाँ पतिव्रता थीं।

पुत्र पितृभक्त थे। ब्राह्मण वेदाध्ययनरत थे। क्षत्रिय ब्राह्मणों की सेवा करते थे। वैश्य ब्राह्मणों और गौओं के भक्त थे। कोई विधवा स्त्री श्री राम के राज्य में नहीं थी और न सौत वाली स्त्री कोई थी। कोई भी व्यक्ति माता पिता और गुरु की आज्ञा की अवज्ञा नहीं करता था। राम के राज्य में कोई अपवादी, चोर, जुवारी और पापी नहीं थे और न कोई दरिद्र रामराज्य में था।

एक सुदृढ़ सम्पन्न, पारदर्शी, निष्पक्ष, भ्रष्टाचार से मुक्त, प्रजावत्सल दुर्बल वर्ग को भी न्याय देने वाले प्रशासन की स्वयं राम की क्या कल्पना थी, इसका कुछ संकेत वाल्मीकि रामायण में राम और भरत के संलाप में मिलता है। राम के निष्क्रमण के पश्चात जब भरत राम को मनाने और उन्हें अयोध्या वापस लाने के लिये चित्रकूट पहुँचते हैं तो अयोध्या की कुशलक्षेम पूँछने के बहाने श्री राम भरत को राजनीति का उपदेश देते हैं और बताते हैं कि एक अच्छे, शक्तिशाली, सतर्क, कर्तव्यनिष्ठ, प्रजा के हितैषी राजा को क्या क्या करना चाहिये।

राम कहते हैं :–

राजकुमार तुम प्रतिदिन पूर्वान्ह में मुख्य राजपथ पर जाकर एक बार प्रजाजनों को दर्शन देते हो न ?

कच्चिद दर्शयते नित्यं मानुषाणां विभूषितम्।

उत्थायोत्थायपूर्वान्हे राजपुत्र महापथे

पुनः, क्या सभी कर्मचारी निःशंक तुम्हारे समक्ष पहुँच पाते हैं ? या सभी तुमसे दूर दूर रहते हैं। इस संबंध में मध्यम स्थिति ही श्रेयस्कर है, अर्थात् न अधिक सामीप्य, न अधिक दूरी।

कच्चिन् न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षस्ते विशंकया।

सर्वे वा पुनरुत्सृष्टा मध्यमेवात्र कारणम्।।

आशय यह है कि राजा अर्थात् प्रशासन का उच्चतम अधिकारी प्रजा के और राज कर्मियों के लिए (inaccessible) अर्थात् पहुँच से बाहर नहीं होना चाहिए। लोभ अर्थात् भ्रष्टाचार के कारण किसी भी निरपराध नागरिक का उत्पीडन न हो, इसे सुनिश्चित करना राजा (प्रशासन) का कर्तव्य है।

कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्मा क्षारितश्चापकर्मणा।

सदृष्ट्वा शास्त्रकुशलैर्नलोभाद् बध्यते शुचिः।।

राम कहते हैं, भरत तुम्हारे राज्य में चोरी करते देखे गये और पकड़े गये चोर को भ्रष्टाचार के कारण छोड़ तो नहीं दिया जाता है?

गृहीनश्चैव पृष्ठश्च काले दृष्टः सकारणः।।

कच्चिन मुच्यते चोरो धनलाभान्नरर्षभ।।

राम पुनः पूछते हैं, निर्धन व्यक्ति का धनी व्यक्ति से विवाद होने पर तुम्हारे मंत्रीगण धन के प्रभाव में तो नहीं आ जाते ? अर्थात दुर्बलों को भी तुम्हारे राज्य में न्याय मिलना चाहिये।

आगे राम ने भरत को राजसंचालन में मंत्रियों से अलग अलग और समवेत रूप में परामर्श करके निर्णय लेने की सलाह दी है।

ये थे प्रशासन के कुछ बिन्दुओं पर श्रीराम के विचार।

पारस्परिक सद्भाव एवं धर्मपरायणता

पारस्परिक कटुता और विद्वेष तथा तत्संभवा हिंसा और अनाचार आज भारतदेश की सबसे बड़ी त्रासदी है। सारा देश आज धर्म, जाति, वर्ण, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर शतशः विभक्त हो गया है। पड़ोसी और कुटुंबी भी शत्रुवत् आचरण कर रहे हैं।

रामराज्य में प्रजाजनों में पारस्परिक सद्भाव कैसा था, इस पर तुलसीदास जी कहते हैं :

वैर न कर काहू सन कोई।

राम प्रताप विषमता खोई।।

पुनश्च :

सब नर करहिं परस्पर प्रीती।

चलहिं सुधर्म निरत श्रुतिनीती।।

वाल्मीकि जी भी यही कहते है :

सर्वंमुदितमेवासीत् सर्वोधर्मपरोऽभवत्।

राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम्।।

पुनः

आसन् प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः।

सर्वे लक्षणसंपन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः।।

रामराज्य में समाज आजकी तरह द्वेष, दुर्भावना, आशङ्का, सन्देह तथा वर्णगत, जातिगत, क्षेत्रगत विद्वेषों से विभक्त न था। समाज में पूर्ण सद्भावना व्याप्त थी। प्रजाजन परस्पर प्रेम करते थे। गाँधी जी द्वारा कल्पित और प्रतिश्रुत तथा चिरप्रतीक्षित वह रामराज्य आज कहाँ है ?

आर्थिक स्थिति

रामराज्य में प्रजा की आर्थिक स्थिति कैसी थी, आइये इस पर विचार करें। गाँधी जी इस देश की गरीबी और संपन्न तथा सर्वहारा के बीच की खाँई पर बहुत दुःखी थे। उन्होंने स्वयं कोपीन धारण कर लिया और ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

आज इस देश में सर्वत्र दारिद्रय का ही राज्य है। संपन्न पच्छिमी देश इस पर हँसते हैं, तरस खाते है, और शोधग्रन्थ लिखते है। देश के नेता यहाँ की गरीबी का दोहन करके और उसका नाम ले लेकर

शासन की कुर्सी पर बैठते हैं। 'गरीबी हटाओं' का नारा इस देश के कई भूतपूर्व और वर्तमान नेताओं का बहुत वड़ा अवलम्ब रहा है।

रामराज्य में दरिद्रता का कहीं नाम न था। दारिद्रय निःशेष रूप से विलुप्त हो गया था। कोई भी गरीबी रेखा से नीचे नहीं रह रहा था।

नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना।
नहिं कोउ अवुध न लच्छन हीना।।

पुनश्च :

रामराज कर सुख संपदा।
वरनि न सकै फणीश सारदा।।

कृषि का व्यवसाय कितनी समृद्धि पर था, यह इससे स्पष्ट होगा :

ससि सम्पन्न सदा रह धरनी।
त्रेता भई सतजुग कै करनी।।

आज सारा देश वर्षानुवर्ष दैवी आपदाओं, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकंप आदि से आलोड़ित होता रहता है। रामराज्य दैवी आपदाओं से मुक्त था। समय से आवश्यकतानुसार वृष्टि होती थी और यथावश्यक तपन होता था।

काले वर्षति पर्जन्यः पातयन्नमृतं पयः।
विधु महि पूरि मयूखन्हि, रवि तप जेतनहि काज।
माँगे वारिद देहिजल रामचन्द्र के राज।।
नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तभ पुष्पिताः।।
कामवर्षी पर्जन्यः सुखस्पर्शाश्च मारुतः।।
भूमिः शस्यवती चैव फलवन्तश्च पादपाः।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि वभ्वुः राघवोत्सवे।।

सार्वजनिक स्वास्थ्य

आइये रामराज्य में सार्वजनिक स्वास्थ्य की समीक्षा करें। 50 वर्षों के स्वराज के उपरान्त भी हम सामान्य जनों को मूलभूत चिकित्सा सुविधायें नहीं उपलब्ध करा सके हैं।

रामराज्य में सार्वजनिक स्वास्थ्य की स्थिति पर यह चौपाई प्रकाश डालती है :

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।

सब सुन्दर सब विरुज शरीरा।।

सभी लोग पूर्ण स्वस्थ और दीर्घ जीवी थे। वाल्मीकि रामायण भी यही कहती है।

निरामयाः विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति।

शिक्षा

देश में व्याप्त अशिक्षा के निविड़ अन्धकार के बारे में गाँधी जी बहुत चिन्तित थे। छात्रों के कर्तव्याकर्तव्य के बारे में गाँधी जी ने उन्हें पुनः पुनः संबोधित किया।

रामराज्य में शिक्षा प्रसार तथा ज्ञान विज्ञान की स्थिति पर तुलसीदास जी लिखते हैं।

सब गुणज्ञ सब पंडित ज्ञानी।

सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।।

नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।

जनता की सेवा के नाम पर अपनी स्वार्थसिद्धि में रत, गली गली अपने अल्पज्ञान की अयाचित वर्षा करने वाले, पाखण्डी नेताओं और समाज सुधारकों तथा निर्वसन स्वार्थ के मूर्तस्वरूप कृतघ्नों से भरे आज के युग में रामराज्य के इन गुणज्ञ, ज्ञानी, कृतज्ञ और

निष्कपट नागरिकों का चित्र आज किसी इतर लोक का सा वर्णन लगता है।

कानून और व्यवस्था

भरी दुपहरी में और चतुष्पथों पर हत्यायें, डकैतियाँ, अपहरण और बलात्कार आज नित्य की घटनायें हैं। मूक, असहाय प्रजा उसे सहन कर रही है। दस्युगण अभयारण्य के हिंस्र पशुओं की भांति नगर की सड़कों पर विचरण कर रहे है।

रामराज्य में क्या स्थिति थी ?

वाल्मीकि जी लिखते है :

निर्दस्युर्भवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।

रामराज्य में चोरों डाकुओं का भय न था। कोई व्यक्ति अपराध करता ही न था।

धर्माचरण और सदाचार रामराज्य में किस उत्कर्ष पर था, इस विषय में ये पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं–

चारिउ चरन धर्म जग माँही।
पूरि रहा सपनेहुं अघ नाहीं।।

पुनश्च :

सब उदार सब पर उपकारी।

यह वह आदर्श राज्य था जिसमें अश्वपति की भाँति राजा पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता था।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
न अनाहिताग्निः नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

मेरे जनपद में कोई चोर नहीं निवास करता, न यहाँ कोई कदर्य है और न मद्यपान करने वाला है, अग्नि अर्चना न' करने वाला, अविद्वान, स्वेच्छाचारी कोई पुरुष यहाँ नहीं हैं। स्वेच्छाचारिणी स्त्री का प्रश्न ही नहीं है।

रामराज्य में वर्णाश्रम धर्म जो सनातन धर्म का अभिन्न अंग था, पूर्णतः प्रतिष्ठित था। ब्राह्मण समुदाय अध्ययन, अध्यापन और यज्ञ कर्म तें रत, पूर्णतः निस्पृह और अपरिग्रही था। क्षत्रिय पराक्रमी, दानी, यज्ञ में निष्ठा रखने वाले, प्रजा वत्सल और धर्म भीरू थे। स्थान–स्थान पर ऋषि कुलपतियों द्वारा संचालित गुरुकुलों में ब्रह्मचारी विद्या का अर्जन और अभ्यास करते थे। नागरिक पूर्णतः धर्म परायण थे। धर्म अपने सम्पूर्ण विकास को प्राप्त सारी अवनी को आच्छादित कर प्रतिष्ठित था। नागरिकों का यह धर्माचरण रामराज्य को पच्छिम के विद्वानों द्वारा कल्पित यूटोपिया से उच्चतर और विशिष्ट धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। यूटोपिया की कल्पना भौतिक सुख और सम्पन्नता का उच्चशिखर है। रामराज्य भौतिक विकास और धर्म के उत्कर्षशिखर दोनों का पर्यायवाची है।

दाम्पत्य

रामराज्य में वैवाहिक जीवन कितनासुखमय था और प्रति पत्नी किस प्रकार एकनिष्ठ थे, इस विषय पर प्रस्तुत है।

एक नारि ब्रत रत सब झारी।

ते मन वच क्रम पति हितकारी।।

राम राज्य के सर्वोदयी स्वरूप और प्रजा के सार्वभौमिक सुख, समृद्धि और समस्त सन्तापों और पीड़ाओं से अस्पृष्ट, सुललित जीवन को सारांश रूप में इस चौपाई में अभिव्यक्त किया गया है :–

दैहिक दैविक भौतिक तापा।

राम राजं काहू नहिं व्यापा।।

महात्मा गाँधी द्वारा कल्पित और उनके व्याख्यानों में पुनः पुनः संदर्भित राम राज्य का यही स्वरूप था।

रामराज्य का यह विवरण पढ़ने के उपरान्त आप संभवतः आज के प्रशासन और आज के शासकों के बारे में सोचने को विवश होंगे।

आपने पढ़ा कि राम के राज्य में कोई चोर नहीं था, कोई डाकू नहीं था। आज देश में चोरों और डाकुओं का मेला लगा है, वह भी महिमामंडित डाकुओं का/अपहर्ता, डाकू और अन्य अपराधी अभयारण्य के हिंस्र भेड़ियों की भाँति सड़कों पर निर्भय विचरण कर रहे हैं, या पंचतारा होटलों, और विधायकों/सांसदों के महलों में निवास कर रहे हैं। वाल्मीकि जी कहते हैं कि राम के राज्य में कहीं भ्रष्टाचार नहीं था और साधारण तथा निर्धन जनों को भी न्याय मिलता था। आज के भारतवर्ष में यह स्थिति है कि भ्रष्टाचार ने पूरे समाज को निगल लिया है और आप अपने पड़ोसी से लेकर देश के उच्चतम पदों पर आसीन व्यक्ति के बारे में भी अकाट्य रूप से यह नहीं कह सकते कि किस दिन उसके भ्रष्ट आचरण का खुलासा हो जाये। जहाँ तक वर्तमान काल में न्याय पाने की बात है, वह बहुत दूर की और बहुत मंहगी चीज़ है। सामान्य भारतीय की पहुँच के बाहर है। गांधीजी ने अंग्रेजी राज्य को जिसमें आज की तुलना में आधा या चौथाई भी अपराध नहीं था, रावण राज्य का नाम दिया था। यदि गाँधीजी जीवित होते तो आज के प्रशासन को और आज के शासकों को कौन सा नाम देते ?

यह इस देश का दुर्भाग्य है कि 58 वर्षों की स्वधीनता के बाद भी महात्मा गाँधी का रामराज्य दूर क्षितिज पर भी नहीं दिख रहा है। कदाचित् गाँधी जी की नृशंस हत्या के साथ किन्हीं अदृश्य हाथों ने उनके इस शिशु मानस पुत्र की भी हत्या कर दी।

**



प्राचीन भारतीय इतिहास में लखनऊ विश्वविद्यालय से आनर्स और एम.ए.। आनर्स परीक्षा में सम्पूर्ण कलासंकाय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। संस्कृत भाषा और साहित्य का विशेष अध्ययन। इन विषयों में गहरी रुचि रही।

लम्बे समय तक भारतीय प्रशासनिक सेवा से जुड़े रहने के उपरान्त १९८३ में अवकाश ग्रहण। सेवानिवृत्ति के पश्चात् कानपुर विश्वविद्यालय के कुलपति मनोनीत हुये, किन्तु उसे अस्वीकार करके और उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान तथा अयोध्या शोध संस्थान के निदेशक पदों पर रहकर संस्कृत और संस्कृति की सेवा की।

आकाशवाणी और संस्कृत पत्रिकाओं से संस्कृत के अनेक प्रसारण। शीर्ष हिन्दी पत्रिकाओं धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी आदि में अनेक व्यंग लेख प्रकाशित।

प्रकाशित कृतियाँ : परिहासशतकम्, सरलसंस्कृतम्, संस्कृत सुभाषितों का अंग्रेजी अनुवाद 'जेम्स फ्राम संस्कृत लिटरेचर' १९९९ में प्रकाशित और चर्चित।

संपर्क : अरुणालोक, निरालानगर, लखनऊ